दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० २४९६ तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष २६ अंक नं० ४

हमारी प्रिय वस्तु

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

जो वन-जंगल में वास करते थे और आत्मा के आनंद की शोध करके उसके वेदन में जीवन व्यतीत करते थे—ऐसे संत मुनिराज कहते हैं कि—अहो! हमें तो हमारा चैतन्यपद ही परम प्रिय है... चैतन्य का आनंद अचिंत्य है। देव भी चैतन्य के आनंद की कथा सुनने के लिये स्वर्ग से उतरकर इस मनुष्य-लोक में आते हैं। हमें जो परम प्रिय है, ऐसे ज्ञायकभाव के ही गीत इस समयसार में हमने गाये हैं।

भाई, बाह्य पदार्थों का प्रेम करके ही अनंत काल से तू दुःखी हुआ है, अब वह प्रेम छोड़, और अपने आत्मा से प्रेम कर। जगत के पदार्थों की अपेक्षा अपने आत्मा को ही सर्वाधिक इष्ट बना। 'जगत इष्ट नहिं आत्म से'—ऐसा जीवन व्यतीत कर, तो तेरा अपूर्व कल्याण होगा। हमारी एक ही प्रिय वस्तु जो शुद्धात्मा, वह हम तुझे बता रहे हैं, उसे अनुभव में ले तो तेरा जीवन आनंदमय हो जाये।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

सितम्बर : १९७० वार्षिक मूल्य ३) रुपये (३०४) एक अंक २५ पैसा [श्रावण : २४९६

आत्मधर्म

आजीवन सदस्य योजना

आत्मधर्म मासिक-पत्र के हजारों की संख्या में ग्राहक हैं। पत्र अधिक से अधिक विकसित हो और उसके स्थायी ग्राहकों को प्रतिवर्ष वार्षिक शुल्क भेजने का कष्ट न हो तथा संस्था को भी व्यवस्था में सुविधा रहे, ऐसा निर्णय करके १०१) रुपये की 'आजीवन सदस्य'योजनाचालू ीग ईह"; ऐसे सदस्यों को बिना वार्षिक शुल्क लिये आत्मधर्म आजीवन भेजा जायेगा। जो सज्जन इस योजना से लाभ उठाना चाहें, वे निम्न पते पर १०१) रुपया भेजकर इस योजना में सम्मिलित हो जायें। यह योजना गुजराती तथा हिंदी दोनों भाषाओं के 'आत्मधर्म' के लिये है।

पत्र-व्यवहार का पता—

श्री मैनेजर

दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

आत्मधर्म के 'आजीवन सदस्य'

१. श्री घासीराम बंसीधर सरावगी, रामगढ़ (राज.)
२. श्री बाबूलालजी सरावगी, कलकत्ता
३. श्रीमती वीणा जैन जगदीशचंद्र मोदी, बम्बई
४. श्री बसंतीलाल झांझरी जैन, कलकत्ता
५. श्री चिमनलाल हीरालाल, झूमरीतलैया
६. श्री पूरणचंदजी गोदिका, जयपुर
७. श्रीमती कमलकांता जैन, बम्बई
८. श्री प्रेमचंद अतरलाल जैन, दिल्ली
९. श्री दिगम्बर जैन मंदिरजी, गोहाटी
१०. श्री जुम्मरुमलजी पांड्या, गोहाटी
११. श्री भँवरलाल जैन, गोहाटी
१२. श्री नेमीचंदजी, गोहाटी
१३. श्री कैलाशचंद प्रेमचंद जैन, भिंड
१४. श्री प्रकाशचंदजी जैन, उज्जैन
१५. श्री नेमीचंदजी पाटनी, आगरा
१६. श्री रतनलालजी सेठी, इंदौर
१७. श्री भ. ला. ठोलीया, बम्बई
१८. श्री राजमलजी जैन, द्वारा मांगीलाल सूरजमल छावड़ा, कुचामन सीटी (राज.)
१९. श्री विमलप्रभा देवी, अहमदाबाद
२०. श्री पदमचंदजी जैन, आगरा
२१. श्री जैसराजजी कालुरामजी जैन अजमेरा, नीमच (म.प्र.)
२२. श्रीमती द्रौपदीदेवी द्वारा श्रेयांसप्रसाद जैन, नजीबाबाद (उत्तरप्रदेश)

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

卐 संपादक : श्री ब्र० गुलाबचंद जैन 卐

सितम्बर : १९७०☆ श्रावण, वीर नि०सं० २४९६, वर्ष २६ वाँ ☆ अंक : ४

आत्म-निर्णय

* मैं ज्ञानस्वभाव हूँ—ऐसा जो यथार्थ निर्णय है, उसकी संधि ज्ञानस्वभाव के साथ है, विकल्प के साथ उसकी संधि नहीं।
* ज्ञान और विकल्प दोनों निर्णयकाल में होते हुए भी, उनमें से ज्ञानस्वभाव के साथ संधि का काम ज्ञान ने किया है, विकल्प ने नहीं।
* ज्ञानस्वभाव के साथ संधि करके, उसके लक्ष्य से निकली ज्ञानधारा ज्ञान के अनुभव तक पहुँच जायेगी।
* ज्ञानस्वभाव के साथ संधि करने की शक्ति विकल्प में नहीं। ज्ञान ने स्वभाव का स्पर्श किया, तब सच्चा निर्णय हुआ।
* ज्ञानस्वभाव के निर्णय में विकल्प से ज्ञान अधिक हुआ है; ज्ञान और विकल्प के बीच बिजली गिर चुकी है, दरार पड़ गयी है, वह अब जुड़ेगी नहीं।

— ऐसे आत्मनिर्णय के बल से सम्यक्त्व प्राप्त होता है।

अरिहंतदेव की उपासना का स्वरूप

शिरपुर में पंचकल्याणक महोत्सव के प्रसंग पर प्रातःकाल श्री समयसार तथा दोपहर को उपासकसंस्कार (पद्मनंदीपच्चीसी) पर प्रवचन होते थे; उसमें सम्यग्दर्शन क्या है, श्रावक की भूमिका में सम्यक्त्वसहित कैसे भाव होते हैं, उसे वीतरागी देव-गुरु-शास्त्र के प्रति पूजा-बहुमान इत्यादि के कैसे भाव होते हैं—उनका सुंदर विवेचन होता था; उसका संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

सम्यग्दर्शन तथा आत्मभान सहित स्वरूप में लीन होकर जो चारित्रदशा प्रगट हुई, उस मुनिदशा की तो क्या बात! वह तो साक्षात् धर्म है। ऐसी मुनिदशा में तो वीतरागता इतनी उग्र हो गई है कि वस्त्र धारण करने जितना भी राग वहाँ नहीं रहा! ऐसा होने पर मुनिदशा में किंचित् वस्त्र अंगीकार करना जो मानते हैं, उनको तो वीतरागी मुनिदशा का भी ज्ञान नहीं है; मुनि की दशा में संवर-निर्जरा की कितनी तीव्रता है, तथा आस्रव-बंध कितने मंद हो गये हैं, इसका उन्हें ज्ञान ही नहीं है; इसलिये सब तत्त्वों में उनकी भूल है।

चारित्रवंत मुनिदशा, वह तो परमेष्ठी पद है, जागतपूज्य है। ऐसी मुनिदशा के पहले धर्मी श्रावक कैसे होते हैं तथा उनकी भूमिका में देव-गुरु-शास्त्र आदि के प्रति कैसे शुभभाव होते हैं, उसका वर्णन इस उपासक-संस्कार अधिकार में है।

धर्मप्रेमी श्रावक उत्तम जिनमंदिर का निर्माण करवाता है, उसमें सर्वज्ञ-जिनदेव अरिहंत परमात्मा की प्रतिमा विराजमान करता है। भगवान को पहिचाना है, इसलिये वीतरागता के अनुरूप उनकी प्रतिकृति स्थापित करता है। भगवान की प्रतिमा भी भगवान जैसी ही वीतरागी होती है, उसको वस्त्राभरण नहीं होते। प्रतिदिन सर्वप्रथम परमात्मा का स्मरण करके उनके दर्शन-पूजन करता है, यह श्रावक का कर्तव्य है। जिसे वीतरागता की रुचि है, वह सर्वप्रथम वीतराग परमात्मा का स्मरण करके फिर अन्य कार्यों में लगता है।

समंतभद्रस्वामी जैसे मुनिराज भी भगवान की स्तुति करते हुए कहते हैं कि—हे प्रभु! मुझे आपकी स्तुति करने का व्यसन हो गया है। नित्य-नित्य नये-नये भावों से सर्वज्ञ-वीतराग की स्तुति करने का मुझे व्यसन है। धर्मी को सर्वज्ञ परमात्मा का प्रेम जागृत हुआ, वह कभी छूटता नहीं।

हे सर्वज्ञ परमात्मा!

अभव्य मिथ्यादृष्टि जीव आपका स्मरण नहीं कर सकते, क्योंकि उनको सर्वज्ञ के स्वरूप की खबर ही नहीं है; वे तो राग में तन्मय हैं। धर्मी जीव को भगवान की पहिचानपूर्वक भक्ति-पूजा का शुभभाव आता है, राग में उसकी तन्मयबुद्धि नहीं है; तन्मयबुद्धि तो अपने शुद्धस्वरूप में ही है। अपने द्रव्य-गुण-पर्याय के अतिरिक्त किसी भी परभाव में धर्मी जीव तन्मयता स्वीकार नहीं करता।

जिनपद सो निजपद—ऐसी पूर्ण स्वरूप की प्रतीति, वह जिनदेव की परमार्थ पूजा है, तथा ऐसे निश्चयपूर्वक अरिहंत परमात्मा की भक्ति का शुभभाव, वह व्यवहार-पूजा है। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की सेवा का विकल्प भी धर्मी जीव को नहीं आता। यद्यपि सच्चे वीतरागी देव-गुरु की पूजा-भक्ति का भाव भी शुभराग है, वह धर्म नहीं है, तथा वह राग मिथ्यात्व भी नहीं; धर्मी को वह भाव आता है; किंतु कुदेवादिक की सेवा, यह तो मिथ्यात्व है, उसका सेवन धर्मी को कदापि नहीं होता।

अंतर में निर्विकल्प अनुभव के द्वारा अपने निज परमात्मा का आदर करता है, और बाह्य में शुभराग के समय जिनदेव की पूजा इत्यादि करता है, जिनमंदिर बनवाता है, निर्ग्रंथ गुरुओं की पूजा करता है। मुनि न मिलें तो?—तो उनका स्मरण करके भावना करना; किंतु विपरीत रूप से मुनिदशा को स्वीकार नहीं करना। मुनिदशा अर्थात् मोक्ष की साक्षात् साधकदशा, उसका स्वरूप विपरीत नहीं माना जा सकता। सच्चे गुरु का अर्थात् निर्ग्रंथ मुनि का स्वरूप बराबर पहिचानकर, उससे विपरीत की श्रद्धा का श्रावक त्याग करता है। भले ही मुनि वर्तमान दिखायी न दें, किंतु उनके स्वरूप की श्रद्धा तो बराबर करना चाहिये। सच्चे मुनि दिखलाई न दें तो चाहे जिसको मुनि नहीं माना जा सकता। स्वयंभूरमण समुद्र में तो असंख्यात मच्छ पाँचवें गुणस्थानवर्ती श्रावक हैं; वहाँ मुनि कहाँ है?—भले ही न हों, किंतु मुनि का

स्वरूप जैसा है, वैसा वह बराबर समझते हैं, वे विपरीत नहीं मानते। अंतर में आत्मा का भान है, तथा सच्चे देव-गुरु की स्थिति कैसी होती है, इसकी भी उन्हें प्रतीति है।

देव-गुरु की सच्ची पहिचानपूर्वक और वीतरागता की भावनासहित जो श्रावक जिनमंदिर का निर्माण करवाता है, उसमें भक्ति से जिनबिंब की स्थापना करवाता है, उस श्रावक को प्रशंसनीय कहा है। अंतर में वीतरागता का बहुमान है अर्थात् राग से धर्म मानने की मिथ्याश्रद्धा का त्याग कर दिया है, और बाह्य में मिथ्यादेव-गुरु-धर्म का त्याग करके वीतरागता के ही पोषक ऐसे सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के प्रति बहुमान उत्पन्न हुआ है, इसलिये जगत में वीतरागमार्ग की प्रभावना की वृद्धि किसप्रकार हो, वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु एवं धर्म की महिमा जगत में किसप्रकार फैले, ऐसे भावों को धारण करके जिनमंदिर-जिनबिंब प्रतिष्ठा इत्यादि के उत्सव करवाता है—ऐसे कार्यों को शास्त्रकार संमत अर्थात् प्रशंसनीय बतलाते हैं। ऐसा सुंदर, सरल वीतरागमार्ग! वह जगत में कैसे प्रकाशित हो, ऐसी भावना श्रावक को सदा होती है।

☆★☆★☆★☆★☆★☆★

हे जीव! जगत में जो अनंत परवस्तुएँ हैं, वे तेरे लिये तो अवस्तु है। इसलिये तुझे अपने से भिन्न अन्य किन्हीं जीव या अजीव वस्तुओं का काम नहीं; तुझे तो अपने द्रव्य और पर्याय के साथ ही काम है। द्रव्य-धर्म है, वह पर्याय को नहीं करता, पर्याय का कार्य वस्तु के पर्यायधर्म से होता है। वस्तु में जो पर्याय है, वह पर्याय है और द्रव्य है, वह द्रव्य है; द्रव्य, वह पर्यायरूप नहीं होता और पर्याय, वह द्रव्यरूप नहीं होती।—ऐसी द्रव्य-पर्यायरूप दो स्वभाववाली वस्तु है।—इसका नाम अनेकांत है। वस्तु को द्रव्य अपेक्षा से नित्य-निष्क्रिय-ध्रुव आदि कहा जाता है और पर्याय अपेक्षा से उसे अनित्य-सक्रिय-उत्पाद-व्ययसहित कहा जाता है—ऐसी दोनों की अपेक्षा ध्यान में रखकर द्रव्य-पर्याय का यथार्थ ज्ञान होता है। (—प्रवचन से)

☆★☆★☆★☆★☆★☆★

पर के कारण विकार होता है —ऐसी मान्यता सचमुच अपराध है

[अशुद्धता दूर होकर शुद्ध होने का अवसर कब आये ?]

(समयसार, कलश २२१ पर पूज्य स्वामीजी का प्रवचन)

अपनी शुद्ध चैतन्य वस्तु का जिनको अनुभव नहीं, अज्ञानता से रागादि अशुद्धभावों का ही अनुभव करते हैं, तथा परद्रव्य ही मुझे विकार कराता है—ऐसी मान्यता धारण कर रखी है, ऐसे जीव शुद्धबोध से रहित हैं, तथा सम्यक्त्व से भी शून्य हैं। ऐसे अज्ञानी जीवों का क्या अपराध है ? तथा उस अपराध का क्या फल है ? उसे बतलाकर आचार्यदेव करुणापूर्वक उन जीवों को उस अपराध से छुड़ाते हैं।

अरे जीव ! यदि परद्रव्य ही जबरन अशुद्धता करवाते हों तो उस अशुद्धता से रहित होने का अवसर कब आयेगा ? क्योंकि परद्रव्य तो जगत में सदा विद्यमान ही रहनेवाले हैं; अगर वे विकार करवाते हों तो सर्वकाल विकार होता रहेगा; इसप्रकार विकार की परम्परा बनी रहने से विकार से छूटने का अवसर आयेगा ही नहीं; इसलिये तेरा शुद्ध या अशुद्ध परिणमन तेरे द्वारा ही होता है—ऐसा तू समझेगा, तभी शुद्ध द्रव्य के आश्रय से शुद्धता प्रगट करके अशुद्धता को दूर करने का अवसर आयेगा।

तू अपनी स्वतंत्रता को पहिचान कि मैं बाह्य की ओर झुका, इससे मुझे अशुद्धता हुई; यदि मैं अंतर में स्व की ओर झुक जाऊँ तो शुद्धता होगी; अतः मेरी अशुद्धता अथवा शुद्धता में परद्रव्य का किंचित् भी कार्य नहीं। ऐसा स्वतंत्रता का ज्ञान करके स्वसन्मुख होने से शुद्धता का अवसर प्राप्त होता है।

परंतु जिस जीव को अपनी स्ववस्तु का ज्ञान नहीं, उसका सब ज्ञान विपरीत है, जिसके सम्यक्त्वचक्षु बंद हो गये हैं, वह जीव मोहशत्रु की सेना को जीत नहीं सकता। उसका अपराध क्या ? कि कर्म आदि परद्रव्य मुझे विकार कराते हैं, ऐसी उसकी मान्यता ही उसका महान

अपराध है। अपनी पर्याय का उसे ज्ञान नहीं।

पर के कारण विकार होता है—ऐसी मान्यतावाले जीव को अपराधी घोषित किया, तो उस अपराध का फल क्या ?—कि अनंत संसाररूपी जेल; इसलिये कहा है कि परद्रव्य जीव को अशुद्धता करवाता है, ऐसी मान्यतावाली जीवराशि अनंत संसारी है, संसार-समुद्र को वह पार नहीं कर सकती। स्वाश्रित परिणाम करने का तो उसको अवकाश ही नहीं, फिर उसकी अशुद्धता कैसे दूर हो ?

इस कलश के भावों की स्पष्टता करते हुए पंडित बनारसीदासजी समयसार-नाटक में कहते हैं कि:—

कोउ मूरख यों कहे, राग दोष परिनाम,
पुद्गल की जोरावरी, वरते आतमराम॥६२॥
ज्यों ज्यों पुद्गल बल करे, धरि धरि कर्मज मेष,
रागदोष को परिणमन, त्यों त्यों होइ विशेष॥६३॥

(पुद्गल कर्म जीव को राग-द्वेष करवाते हैं-ऐसी असत्य मान्यतावाले अज्ञानी को सत्य मार्ग का उपदेश देते हुए कहते हैं कि—)

इहविध जो विपरीत पक्ष, ग्रहे श्रद्धहे कोय;
सो नर राग विरोधसों, कबहूँ भिन्न न होय॥६४॥
सुगुरु कहै जग में रहे, पुद्गल संग सदीव;
सहज शुद्ध परिणमन को, अवसर ले न जीव॥६५॥
तातें चिद्भावनि विषे, समरथ चेतन राव;
राग-विरोध मिथ्यात में, समकित में शिवभाव॥६६॥

यह चेतन राजा स्वयं ही अपने चैतन्यभावों को करने में समर्थ है; मिथ्यात्वभाव में तो वह राग-द्वेष परिणामरूप भावों का कर्ता है और सम्यक्त्वभाव में यह मोक्षमार्ग का कर्ता है।—इसप्रकार जीव स्वयं अपने भावों का कर्ता है।

प्रथम (श्लोक ६१ में) शिष्य पूछता है कि हे स्वामी! इस राग-द्वेष का मूल प्रेरक कौन है ? क्या पुद्गलकर्म, इन्द्रियविषय या धन, मकान, परिजन इस जीव को राग-द्वेष करवाते

हैं ?—तब उत्तर में कहते हैं:—

गुरु कहै छहों द्रव्य अपने अपने रूप,
सबिनको सदा असहाई परिणमन है;
कोऊ दरव काहूकौ न प्रेरक कदाचि तातैं;
राग-दोष-मोह-मृषा मदिरा अचौन है॥६१॥

भाई, कोई भी द्रव्य तुझे विकार नहीं करवाता; तेरा मिथ्यात्वरूप मोहभाव ही राग-द्वेष का मूल कारण है।

यह शुद्धात्मतत्त्व स्वभाव से तो ज्ञान-आनंद-सुख इत्यादि गुणों से भरपूर है, अशुद्धता की उत्पत्ति उसके स्वभाव में नहीं होती।—तब पर्याय में अशुद्धता होती है, वह किसप्रकार होती है? उसकी यह बात है। उस अशुद्धतारूप जीव स्वयं अपनी पर्याय में अशुद्धरूप परिणमन करने की शक्ति से ही परिणमित हुआ है; अपने शुद्ध स्वभाव के अनुभवरूप परिणमन नहीं करके मोहरूप परिणमित हुआ है, किसी अन्य ने उसको परिणमित नहीं किया। जो जीवराशि अर्थात् जो कोई जीव-समूह इसप्रकार की मान्यतावाला है कि हमें परद्रव्य अशुद्धता करवाते हैं, वह जीवराशि मिथ्यादृष्टि अनंत संसारी है।

अनंत संसारी क्यों कहा?—क्योंकि परद्रव्य अशुद्धता करवाते हैं—ऐसी मान्यता जब तक रखेगा, तब तक संसार में परिभ्रमण करता ही रहेगा; परद्रव्य तो जगत में अनंत काल तक रहनेवाले हैं। यदि परद्रव्य विकार करवाते हैं, तो अनंत काल तक विकार होता ही रहेगा; विकार से रहित होने का अवसर आयेगा ही नहीं; अतः ऐसी मान्यता रखनेवाले की अशुद्धता अनंत काल तक दूर नहीं हो सकती अर्थात् संसार दूर नहीं हो सकता। अपने को पराधीन माननेरूप विपरीत मान्यता दूर करे, तब अपनी पर्याय में से अशुद्धता दूर होगी तथा संसार का अंत भी तभी आयेगा। इसलिये करुणा करके संत समझाते हैं कि भाई, तेरी भूल तूने की है; परद्रव्य में ऐसी शक्ति नहीं कि तुझे दोष कराये। तथा तेरा स्वरूप भी ऐसा नहीं कि पर से तुझमें दोष प्रविष्ट हो जाये अरे, अनंत संसार के दुःख से तू तड़फ रहा है, तो हम तुझे उससे मुक्त होने का उपाय बतलाते हैं—उसे तू लक्ष में ले। अपनी अवस्था में अशुद्धता मैंने अपनी भूल से ही की है, और यह भूल क्षणिक है, तथा मेरा शुद्धस्वभाव त्रैकालिक है—इसप्रकार शुद्धस्वभाव को लक्ष में

लेने से पर्याय की क्षणिक भूल दूर हो जायेगी, तथा स्वभाव के आश्रय से शुद्धता होगी।

भाई, तुझे अपनी भूल मिटाकर निर्दोष होना है क्या ?—हाँ; तो अपने शुद्धस्वभाव को लक्ष में ले, तब तुझे स्वभाव के आश्रय से शुद्धता प्रगट होगी।

अज्ञानी अपने स्वभाव से तो अनजान है ही; परंतु पर्याय में जो अशुद्धता होने की शक्ति है, उसका भी उसे ज्ञान नहीं है। अशुद्धता की शक्ति अपनी पर्याय की है—ऐसा न मानकर परसंयोग अशुद्धता करवाते हैं, ऐसा अज्ञानी मानता है। 'पर्याय की शक्ति' अर्थात् पर्याय की उस समय की योग्यता; पर्याय में अशुद्धता की शक्ति बतलाई, इस कारण कहीं अशुद्धता जीव का स्थायी स्वभाव नहीं हो गया, क्योंकि पर्याय स्वयं एक समय की होती है। यहाँ पर तो यह सिद्ध किया गया है कि अपनी पर्याय की एक समय की अशुद्ध शक्ति भी स्वतंत्र है;—ऐसा जो नहीं पहिचानता, वह त्रैकालिक स्वभाव की शुद्धता की सामर्थ्य को कहाँ से पहिचान सकेगा ? उसको स्वतंत्र द्रव्य-गुण की पहिचान नहीं, पर्याय की पहिचान नहीं, तथा पर की भी पहिचान नहीं; परद्रव्य तो बेचारा उसके भाव में निरंतर परिणमन कर रहा है, वह इस जीव को किंचित भी विकार नहीं करवाता; फिर भी अज्ञानी उसे कलंक लगाता है कि तूने मुझमें अशुद्धता उत्पन्न की, यह अज्ञानी का अक्षम्य अपराध है। शास्त्र में से जो स्वाश्रय का आश्रय निकालना चाहिये, उसका अज्ञानी को पता नहीं है, किंतु अपनी विपरीत दृष्टि के कारण शास्त्र का आशय भी उल्टा ही समझता है।

भाई, मेरे दोष मैंने किये हैं—ऐसा समझ, तभी तुझे उन दोषों को दूर करने की चिंता रहेगी। परंतु दोष परद्रव्य ही करवाते हैं—ऐसा यदि तू मानेगा तो उनको दूर करने की चिंता रहेगी ही कहाँ से ? परद्रव्य ही तुझे दोष करवाते हों, तो फिर तुझमें कुछ पुरुषार्थ है या नहीं ? विकार से रहित सम्यग्दर्शनादि शुद्धस्वभाव प्रगट करने का ही पुरुषार्थ तुझमें है या नहीं ? अयोग्यता और योग्यता, शुद्धता और अशुद्धता, यह दोनों मेरे पुरुषार्थ के कार्य हैं—ऐसा यदि समझेगा तो स्वपुरुषार्थ से अशुद्धता दूर होकर शुद्धता प्रगट होगी; परंतु अपने पुरुषार्थ को ही जो स्वीकार नहीं करता, उसके लिये अशुद्धता दूर करके शुद्धता का अवसर आयेगा ही कहाँ से ? अनुकूल या प्रतिकूल संयोगों के ढ़ेर आत्मा को चलायमान नहीं कर सकते। अनुकूलता के ढ़ेर आत्मा की शुद्धता में सहायक हों या राग उत्पन्न करायें, ऐसा नहीं है; तथा प्रतिकूलता के ढ़ेर

आत्मा को शुद्धता से चलित करें या द्वेष करायें—ऐसा भी नहीं है; अशुद्धता एवं शुद्धता में आत्मा स्वतंत्र है।

भाई, यदि तेरी शुद्धता की तैयारी है तो जगत में सर्वज्ञ और संत विद्यमान ही हैं। तैयारीवाले पात्र जीव को ज्ञानी-धर्मात्मा का योग मिल ही जाता है। ज्ञानी नहीं मिले, इसलिये भटकना पड़ा—इसका अर्थ यह है कि स्वयं ने पात्र बनने का पुरुषार्थ नहीं किया, इसलिये भटका; अपनी योग्यता के बिना ज्ञानी की सच्ची पहिचान नहीं होती। आचार्यदेव कहते हैं कि हे जीव! अपने भावों में तू अपनी स्वतंत्रता की पहिचान तथा स्वभाव की ओर का सम्यक् प्रयत्न कर तो तेरी अशुद्धता अवश्य दूर होगी।

सुख का उपाय

अरे जीव! परद्रव्य का संबंध तुझे दुःख का कारण होता है और स्वद्रव्य में एकाग्रता से सुख ही होता है—ऐसा जानकर तू पर का संबंध छोड़ और निज शुद्धात्मा में एकाग्र होकर मोक्षमार्ग में स्थित हो।

पर का संबंध तोड़ना ही सुख का उपाय है।

कौन अपराधी? कौन निर्दोष? वीतरागी न्यायालय का निर्णय

जैसे न्यायालय में कौन अपराधी और कौन निर्दोष—ऐसा निर्णय होता है; वहाँअ पराधीक ोज ेलि मलतीह ैअ ौरि नर्दोषह ोताह ै,व हछ ूटज ाताह ै। उसीप्रकार यहाँ वीतरागी न्यायालय में भेदज्ञान द्वारा तुलना होती है कि कौन जीव अपराधी है और कौन जीव निर्दोष है। वहाँ अपराधी जीव संसार की जेल में बँधता है, निरपराधी जीव आनंदमय मुक्ति प्राप्त करता है। जो संसार-जेल में से छूटना चाहते हों और आनंदमय मुक्ति को प्राप्त करना चाहते हों, वे अपराध और निरपराध दोनों का स्वरूप पहचानकर राग के अपराध को छोड़ो और शुद्धात्मा के आराधन द्वारा निरपराध होकर मोक्ष का साधन करो।

[समयसार, गाथा ३०१ से ३०५]

❀ संसाररूपी जेल में कौन बँधता है ?

जो अपराधी होता है वह।

❀ अपराधी कौन है ?

जो जीव पर की वस्तु को ग्रहण करके अपनी मानता है, वह अपराधी है।

❀ वह अज्ञानी क्या अपराध करता है ?

अपना आत्मा तो शुद्ध चैतन्यमात्र वस्तु है। चैतन्यभाव ही अपना है। उसके बदले चैतन्य से अन्य ऐसे रागादि परभावों को तथा पर वस्तुओं को ग्रहण करके उन्हें अपना मान रहा है, वह परद्रव्य के ग्रहणरूप अपराध है।

❀ वह अपराधी क्या करता है ?

वह जीव अपने शुद्ध आत्मा का सेवन छोड़कर, अज्ञान से रागादिरूप ही अपने को

अनुभवता हुआ अशुद्ध आत्मा का ही सेवन करता है। शुद्ध आत्मा के सेवनरूप जो राध (आराधना) उससे रहित, वह अपराध है। वह अपराधी जीव बँधता है।

❀ निरपराधी कौन है ?

शुद्ध चैतन्यभाव ही मैं हूँ—ऐसे अपने को शुद्धपने अनुभव करनेवाला ज्ञानी जीव निरपराध है। वह नि:शंक है कि हमारे चैतन्यभाव में कोई बंधन है ही नहीं।

❀ अशुभराग को तो छोड़े परंतु शुभराग को चैतन्य का माने तो ?

तो वह भी चोर है, अपराधी है; क्योंकि चैतन्यभाव में शुभराग का भी अभाव है; अर्थात् चैतन्यभाव की अपेक्षा से शुभराग भी पर का भाव है; फिर भी शुभराग का अपने में ग्रहण करता है, वह परभाव की चोरी करता है, उससे वह बंधता है।

❀ वह चोरी कैसे मिटे ? और बंधन कैसे छूटे ?

भेदज्ञान द्वारा चैतन्यभाव और रागभाव को सर्वथा पृथक् जानकर, चैतन्यभाव को तो अपनेरूप से ग्रहण करना और समस्त रागादि परभावों को पररूप जानकर छोड़ना।—ऐसा करने से शुद्ध आत्मा का ग्रहण होता है, अर्थात् परभाव के ग्रहणरूप चोरी मिटकर निरपराधपना होता है; और बंधन छूट जाता है। शुद्धात्मरूप से ही अपने को अनुभवनेवाला जीव बंधन का छेदकर अल्प काल में मोक्ष प्राप्त करता है। और आत्मा को अशुद्ध अनुभवनेवाला शुभराग द्वारा भी कभी बंधन से छुटकारा नहीं पाता, वह बँधता ही है।

❀ शुद्ध आत्मा कैसा है ?

वह महा आनंद का भंडार है, दु:ख से रहित है, उसमें से चाहे जितना आनंद प्रगट करके भोगा ही करे परंतु वह कभी समाप्त नहीं होता, ऐसे आनंद का खजाना आत्मा है। ऐसे आत्मा का अनुभव करता हुआ धर्मी जीव मुक्त है।

❀ धर्मी मुक्त कैसे हैं ?

शुद्ध चैतन्यभावरूप अपने अनुभव में रागादि बंधभाव का जरा भी प्रवेश नहीं होने देता, बंधभाव को अपने से अत्यंत पृथक् और पृथक् ही रखता है, अत: वह मुक्त है।

❀ राग के सेवन द्वारा निरपराधपना होता है ? अर्थात् मुक्ति हो सकती है ?

नहीं, राग स्वयं अपराध है, बंधभाव है—उसके सेवन से लाभ मानना, यह तो बड़ा अपराध है।

❀ शुभराग द्वारा अपराध कम तो हो सकता है ?

अशुभ के पाप की अपेक्षा से शुभराग में अपराध घटा, ऐसा व्यवहार से भले ही कहा जाये, परंतु वास्तव में राग से पृथक्रूप आत्मा को शुद्ध अनुभव करे, तब ही शुभराग में अपराध घटा, ऐसा कहा जाता है; परंतु जो रागरूप अपराध को ही अपना स्वरूप मान रहा है, उसको अपराध घटा कैसे कहा जाये ? निरपराधस्वरूप के लक्ष से जितना राग घटा, उतना अपराध घटा।

❀ किसके सेवन से मुक्ति होती है ?

शुद्ध आत्मा की सिद्धि जिसका लक्षण है, वह आराधना है, वह निरपराधपना है, उससे मुक्ति प्राप्त होती है। इसप्रकार रागरहित ऐसे शुद्धात्मा के ही सेवन से मुक्ति होती है।

❀ आराधक जीव सदा कैसा वर्तन करता है ?

वह निःशंकरूप से ऐसा अनुभव करता है कि 'जिसका लक्षण उपयोग है, ऐसा एक शुद्ध आत्मा ही मैं हूँ'—इसप्रकार निश्चय करके अपने को शुद्ध अनुभव करता होने से उसको शुद्ध आत्मा की सिद्धि है; इसलिये वह शुद्ध आत्मा की प्राप्तिरूप आराधना सहित सदा वर्तता है।

❀ अज्ञानी जीव कैसा है ?

स्व-पर का एकमेक अनुभव करनेवाले अज्ञानी जीव को परद्रव्य के ग्रहण का सद्भाव होने से शुद्ध आत्मा की सिद्धि का अभाव है। अशुद्धता को ही अनुभव करता होने से वह अनाराधक है, अपराधी है और बँधता है।

❀ ज्ञानी का स्वकार्य क्या है ?

परभावों से रहित ऐसे अपने शुद्ध आत्मा का अनुभव, वह ज्ञानी का स्वकार्य है; और भेदज्ञान द्वारा ज्ञानी को उस स्वकार्य की सिद्धि है। ऐसी सिद्धि ही निर्दोषपना है, वह ही

मोक्ष की साधना है, वह आत्मा की अपने ऊपर प्रसन्नता है। अहो, हमारा आत्मा स्वयं अपने ऊपर प्रसन्न हुआ! किसी पर की कृपा या पर की प्रसन्नता आत्मा को कुछ दे दे ऐसा नहीं है। ज्ञानी ने स्वानुभूति द्वारा अपने आत्मा को प्रसन्न किया; अर्थात् आत्मा की आराधना की, वहाँ आत्मा स्वयं प्रसन्न होकर अपने को पूर्ण आनंद और मोक्ष देता है अर्थात् कार्य की सिद्धि हो जाती है। आत्मा के अतिरिक्त दूसरे की आराधना करके उसके पास से कुछ माँगता है तो वह अपराधी है, अज्ञानी है, क्योंकि वह पर की वस्तु का ग्रहण करना चाहता है। ज्ञानी जानता है कि हमें जगत में किसी से कुछ लेना नहीं है; परद्रव्यरहित हमारा उपयोगस्वरूप आत्मा ही स्वयं परिपूर्ण है—ऐसे अपने आत्मा की ही आराधना से मेरे स्वकार्य की सिद्धि है।

❀ अज्ञानी किसको भजता है ?

अज्ञानी अशुद्ध आत्मा को ही भजता है, अर्थात् रागादि अशुद्धभावरूप ही अपने को सेवन करता है। ऐसी अशुद्धता का सेवन ही अपराध होने से बंध का कारण है।

❀ ज्ञानी किसको भजता है ?

ज्ञानी तो स्वसन्मुख प्रज्ञा द्वारा राग और ज्ञान को पृथक् करके अपने को ज्ञानस्वरूप ही अनुभव करता है अर्थात् अपने शुद्ध आत्मा को ही भजता है। उसमें निर्दोषपना होने से उसे बंधन जरा भी नहीं होता।

❀ जीव ने क्या किया है ?

अज्ञानीरूप से जीव ने सदा राग का ही भजन किया है; राग से भिन्न शुद्ध ज्ञानमय आत्मा का भजन (उसकी श्रद्धा-ज्ञान-अनुभव) करे तो उसको संसार-भ्रमण न रहे, वह आराधक होकर मोक्ष को साधे।

❀ कौन अपराधी ? कौन निर्दोष ?

हे भाई! तू उपयोगस्वरूप आत्मा के अतिरिक्त किसी भी परवस्तु को या रागादि किसी परभाव को अपने में ग्रहण करता है ? या उससे लाभ मानता है ?

यदि कहे—हाँ; तो आचार्य भगवान कहते हैं कि तू पर की वस्तु को लेनेवाला अपराधी

है, तुझे कर्मबंधन होगा।

उपयोग के अतिरिक्त अन्य कोई परभाव मेरे नहीं हैं, उपयोगस्वरूप ही मैं हूँ—इसप्रकार जो अकेले स्वद्रव्य को ही ग्रहण करता है और परद्रव्य को या राग को अपने में जरा भी ग्रहण नहीं करता, वह जीव निर्दोष निरपराधी है, उसको जरा भी बंधन नहीं होता, निःशंकरूप से शुद्ध आत्मा में ही वर्तता हुआ वह मोक्ष को साधता है।

—ऐसा वीतरागी न्याय समझकर हे जीव! उपयोगस्वरूप स्वद्रव्य को ही अपना जानकर उसके अनुभव द्वारा तू मोक्ष को साध; इसके अतिरिक्त समस्त परभावों को अपने से भिन्न जानकर उनका ममत्व छोड़... यह सिद्धांत का सार है... यह मुक्ति का पन्थ है।

पद

भवि देखि छबी भगवान की।टेक॥

सुंदर सहज सौम्य आनंदमय, दाता परम कल्यान की॥भवि०१॥

नासा दृष्टि मुदित मुख वारिज, सीमा सब उपमान की
अंग अडोल अचल आसन दिढ़, वही दशा निज ध्यान की॥२॥

इस जोगासन जोगरीति सों, सिद्धि भई शिवथान की
ऐसे प्रगट दिखावै मारग, मुद्रा धात पाषाण की॥३॥

जिस देखें देखन अभिलाषा, रहत न रंचक आन की।
तृपत होते 'भूधर' जो अब ये, अंजुलि अमृतपान की॥४॥

भवि देखी छबी भगवान की।

सर्व द्रव्यों का अपने-अपने परिणामों के साथ तादात्म्य है

[अपने क्रमबद्ध परिणामरूप द्रव्य स्वयं उत्पन्न होता है,
इसलिये उसी का वह कर्ता है, अन्य का अकर्तृत्व है।]

नव तत्त्व के विकल्पों से पार होकर, आत्मा को अनुभव में लेकर सुविशुद्ध ज्ञान प्रगट होता है। वह बंध-मोक्ष के विकल्पों से दूर है। उसका विकल्प के साथ कर्ता-कर्मपना छूट गया है। वह शुद्ध ज्ञानचेतना का ही रसास्वादी है। ऐसे विशुद्ध ज्ञानरूप से भगवान आत्माराम प्रसिद्ध होता है। क्रम-क्रम से उत्पन्न होती हुई अपनी निर्मल पर्यायों के साथ उसका अनन्यपना है। यह बात इस सर्वविशुद्धज्ञान में आचार्य भगवान ने समझाई है। ऐसे आत्मा को पहचानने पर सम्यग्दर्शनादि होते हैं। उन सम्यग्दर्शनादि निर्मल पर्यायों के साथ अनन्यरूप से आत्मा स्वयं उत्पन्न होता है।

विशुद्ध ज्ञानस्वरूप आत्मा रागादि परभावों को जानता अवश्य है परंतु उनको करता और भोगता नहीं। राग को जानता हुआ आत्मा रागरूप से उत्पन्न नहीं होता, अपितु ज्ञानपरिणामरूप से ही उत्पन्न होता है। राग को नहीं, किंतु उसके काल में ज्ञान, ज्ञान को जानता है। उस ज्ञानपरिणाम के साथ उसकी एकता है परंतु रागादि परिणामों के साथ उसकी एकता नहीं है। सभी द्रव्यों को अपनी उस-उस काल की पर्यायों के साथ तादात्म्य है। अपनी पर्यायरूप से उत्पन्न होते हुए द्रव्य को अन्य द्रव्य की पर्याय के साथ कर्ता-कर्मपना नहीं होता इसलिये उसको अकर्तापना है।

जिसप्रकार सोना अपनी कंकणपर्याय से भिन्न नहीं है किंतु तादात्म्यरूप है, उसीप्रकार सभी द्रव्यों को अपनी-अपनी क्रमबद्धपर्यायों के साथ तादात्म्य है, जुदाई नहीं है। जीव को अपनी केवलज्ञानादि पर्यायों के साथ तन्मयता है, उनमें तन्मय होकर उन पर्यायरूप जीवद्रव्य उत्पन्न होता है; अर्थात् उसको अपनी पर्याय के साथ कर्ताकर्मपना है परंतु अजीव के साथ उसका कर्ताकर्मपना नहीं है। अपनी पर्याय से जीव अलग नहीं है, अपनी पर्याय के साथ द्रव्य का तादात्म्य है, ऐसे निर्णय में अपूर्व भेदज्ञान है और स्वसन्मुखता होकर मोक्षमार्ग प्रगट होता है। मेरे आत्मा को मेरी पर्याय के साथ ही तन्मयता है, ऐसा निर्णय करनेवाला जीव स्वसन्मुख

निर्मल पर्यायों के साथ ही तन्मयरूप से उत्पन्न होता है, रागादि में तन्मय होकर वह उत्पन्न नहीं होता—इसका नाम धर्म है।

कर्म के आश्रय कर्ता, और कर्ता के आश्रय कर्म, इसप्रकार कर्ता-कर्म का अनन्यपना है। इसके अलावा किसी दूसरे प्रकार से कर्ताकर्म की स्थिति देखने में नहीं आती, अर्थात् भिन्न-भिन्न पदार्थों में कर्ताकर्म का संबंध नहीं होता—ऐसे भेदज्ञान में राग का भी अकर्तापन हो जाता है और सुविशुद्धज्ञान रूप से ही आत्मा प्रगट होता है।

एक वस्तु का परिणाम किसी दूसरे से होवे, ऐसा नहीं बनता, क्योंकि सर्व द्रव्यों का अन्य द्रव्य के साथ उत्पाद्य-उत्पादक भाव का अभाव है। इस भाँति निर्णय करके, पर के निरपेक्ष होकर अर्थात् स्वभाव के सन्मुख होकर जीव उत्पन्न होता है, इसलिये उसमें क्रम-क्रम से निर्मल पर्यायें ही उत्पन्न होती हैं। स्वसन्मुख होकर आत्मा का सर्वज्ञस्वभाव जिस श्रद्धा-ज्ञान में बैठा है, उस श्रद्धा-ज्ञान में रागादि परभावों का कर्तृत्व नहीं रहता, अपने अनंत गुण की निर्मल पर्यायों के साथ तन्मय होकर वह परिणमता है। उसके परिणमन का प्रवाह आनंद के वेदन सहित सर्वज्ञता की ओर बढ़ता है। सर्वज्ञ का विरह उसको नहीं रहा। जीव का परिणाम जीव ही है, अजीव नहीं, और अजीव का परिणाम अजीव ही है, जीव नहीं। जिसप्रकार सोने की चूड़ी, वह सोना ही है, लोहा नहीं। उसीप्रकार प्रत्येक द्रव्य का परिणाम उस-उस द्रव्य के साथ ही तन्मय है और अन्य से भिन्न है—ऐसा वस्तुस्वरूप है। ऐसे वस्तुस्वरूप को जाननेवाला ज्ञानी अपने ज्ञानभाव के सिवाय अन्य रागादि सर्व परभावों का अकर्ता होता है। वह राग के ज्ञानरूप से उत्पन्न होता है परंतु राग में तन्मयरूप से उत्पन्न नहीं होता। द्रव्य की क्रमनियमित पर्याय अपने से ही है, ऐसा निर्णय करनेवाला जीव स्वद्रव्य के आश्रय से निर्मल पर्यायरूप से ही उत्पन्न होता है। अज्ञानी अपना स्वाधीन परिणमन भूलकर पराश्रय से विकारभाव करता है, उसी से संसार है।

अपने-अपने परिणामरूप से वस्तु स्वयं परिणमन करती है, दूसरा कोई नहीं; अर्थात् अपने परिणाम का रचयिता स्वयं ही है; दूसरा कोई इस जीव के परिणाम का कर्ता नहीं है और स्वयं दूसरे के परिणाम की सृष्टि का कर्ता नहीं है। ऐसा वस्तुस्वरूप जाने, तब यह जीव ज्ञायक ही रहता है। ज्ञानभाव में पर को करने को मिथ्याबुद्धि का अभाव है। द्रव्य को अपनी पर्यायरूप

से उत्पन्न होने में किसी की अपेक्षा नहीं है। दूसरे की अपेक्षा बिना ही द्रव्य को अपनी पर्याय के साथ कर्ता-कर्म की सिद्धि है,—ऐसा निरपेक्ष वस्तुस्वरूप है। सत् द्रव्य स्वयं ही उत्पाद-व्यय-ध्रुव युक्त है। उस समय की सत् पर्याय उस वस्तु का अंश है और उस अंशरूप वस्तु उत्पन्न होती है। अपनी पर्यायरूप से उत्पन्न होती हुई वस्तु का किसी दूसरे के साथ कर्ताकर्मपने का संबंध नहीं है, ऐसी निरपेक्षता है। अपनी ज्ञानपर्यायरूप से उत्पन्न होता हुआ जीव, अजीव में कुछ भी करता नहीं है। यहाँ तो ऐसा बताते हैं कि अपनी विशुद्ध ज्ञानपर्यायरूप से उत्पन्न होता हुआ जीव कर्म के बंधन में निमित्त भी नहीं होता। वह कर्मप्रकृति के निमित्त से उत्पन्न नहीं होता अर्थात् रागरूप से उत्पन्न नहीं होता, अपितु अपनी निर्मल पर्यायरूप से ही उत्पन्न होता है और उस निर्मल पर्याय में जीवद्रव्य स्वयं ही प्रकाशित है।

जीव के ज्ञानपरिणाम को जीव के साथ कर्ताकर्मपने का संबंध है; परंतु जीव के ज्ञानपरिणाम को चश्मा के साथ, पुस्तक के साथ या जड़ इन्द्रियों के साथ कर्ताकर्मपने का संबंध नहीं है, ज्ञानपरिणाम तो उससे भिन्न और जीव से अभिन्न है; इसप्रकार जीव-अजीव के समस्त परिणामों में समझ लेना चाहिए।

'यह मैं' इसप्रकार ज्ञानमय स्वसत्ता का स्वीकार करने पर आत्मद्रव्य अपनी निर्मल पर्याय के प्रवाहरूप से उत्पन्न होता है। आत्मा सदा परिणमन तो करता ही है परंतु जब वह स्वसत्ता के सन्मुख होकर परिणमन करे, तब निर्मल पर्यायरूप से परिणमन करता है। और वह अपनी पर्याय के साथ अनन्य है, तथा पर का वह अकर्ता है। इसप्रकार स्वपर्यायरूप से उपजते द्रव्य को हे भव्य! तू जान और उस-उस परिणाम के साथ द्रव्य का अनन्यपना मान।

अकेले विकार अंश के ऊपर जिसका लक्ष्य है, उसको अंशी ऐसा शुद्धद्रव्य लक्ष्य में नहीं आता—शुद्धद्रव्य लक्ष्य में आये, तब पर्यायबुद्धि रहती नहीं और विकार का कर्तापना रहता नहीं। निर्मल पर्याय में तन्मय होकर उसका ही वह कर्ता होता है। निर्मल पर्याय, वह आत्मा का निजरूप होने से उसका ही वह कर्ता है, अन्य पदार्थों की पर्यायों के साथ आत्मा का तादात्म्य नहीं है अर्थात् वह निजरूप नहीं हैं; अर्थात् उनका कर्ता आत्मा नहीं है। शुद्धज्ञानमय आत्मा को वास्तव में रागादि परभावों के साथ तन्मयपना या कर्तापना नहीं है। ऐसे शुद्ध आत्मा को तू जान। 'जानना' उसमें मोक्षमार्ग समा जाता है क्योंकि जाननेरूप जो भाव है, उसमें राग

का अभाव है। जाननेरूप भाव, राग का अकर्ता है और राग का अकर्तापना, वह मोक्षमार्ग है। राग का कर्तापना, वह संसार; राग का अकर्ता, ऐसा शुद्धज्ञान परिणाम, वह मोक्ष। इसप्रकार आचार्यदेव ने वस्तुस्वरूप 'जान' ऐसा कहा है, उसमें मोक्षमार्ग आ जाता है। अपनी पर्याय के साथ द्रव्य का अनन्यपना है परंतु दूसरे से उसकी भिन्नता है; इसप्रकार पर्याय के साथ द्रव्य का अनन्यपना देखनेवाले को पर से अपना पृथक्त्व दिखाई पड़ता है; अर्थात् अपने में परद्रव्य का कर्तापना दिखाई नहीं पड़ता। पर्याय के साथ अनन्य ऐसा द्रव्य ही कर्ता है। आचार्यदेव कहते हैं कि ऐसे वस्तुस्वरूप को तुम जानो, कर्ताकर्म का अभिन्नत्व तुम जानो, इससे विरुद्ध मत मानो।

पुद्गलद्रव्य को भी उसकी पर्याय के साथ अनन्यपना है और जीव से भिन्नपना है। अर्थात् पुद्गल की किसी भी पर्याय को देखने पर उसके साथ उस अजीवद्रव्य का अनन्यपना दिखाई पड़ता है। इसप्रकार देखनेवाला जीव, पुद्गलद्रव्य का कर्तापना नहीं मानता। पुद्गल की पर्याय के साथ अनन्य ऐसा वह पुद्गलद्रव्य ही उसका कर्ता है, जीव उसका अकर्ता है।

जीव-अजीव सभी द्रव्यों में यह सिद्धांत लागू पड़ता है। जीव और अजीव सभी द्रव्य अपनी-अपनी उस-उस समय की पर्यायरूप से उत्पन्न होते हैं, इसलिये उनके वह कर्ता है। अपनीप र्यायक ाक र्ताह ोनेप रभ ीअ न्यद्रव्यक ीप र्यायके स ाथउ सकार्ा कंचित्भ ी कर्ताकर्मपना सिद्ध नहीं होता क्योंकि उसकी उनसे अत्यंत भिन्नता है। ऐसे वस्तुस्वरूप को जानने पर भेदज्ञान उत्पन्न होता है, पर में कर्तृत्वबुद्धि छूटती है, और स्वद्रव्य के सन्मुख होकर निर्मल ज्ञानपर्यायरूप से जीव उत्पन्न होता है, इसका नाम सुविशुद्धज्ञान है और यही मोक्षमार्ग है। (समयसार गाथा ३०८ से ३११ के प्रवचन से)

जैसे कस्तूरी-मृग के समीप ही कस्तूरी है, परंतु नाक द्वारा कस्तूरी की सुगंध लेकर इधर-उधर जंगल में खोजता फिरता है, जोर-जोर से दौड़ता है; वैसे ही जीव के समीप ही उससे तन्मयी स्वसम्यग्ज्ञानमयी परमात्मा है, परंतु यह जीव उसे आकाश-पाताल-लोकालोक में खोजता है। अज्ञानी जीव को यह खबर नहीं कि जिसे मैं खोजता हूँ वह मेरी वस्तु तो मेरे ही पास है—मेरे स्वसम्यग्ज्ञान से तन्मयी है अथवा मैं स्वयं ही स्वसम्यग्ज्ञानमयी परमात्मा हूँ।

(सम्यग्ज्ञानदीपिका से)

हिंसा और अहिंसा

प्रश्न—मैं परजीव को मार सकता हूँ, ऐसा माना जाये तो क्या होता है ?

उत्तर—इस मान्यता से अपने विशुद्ध चैतन्य-प्राण का घात ही होता है, अर्थात् आत्म-हिंसा होती है। परजीव की हिंसा तो उसकी आयु के अनुसार हो या न हो, उसके साथ इस जीव को संबंध नहीं है। जीव ने राग-द्वेष रहित अपना जो चैतन्य जीवन है, उसे नहीं जाना, राग के साथ एकत्वबुद्धि द्वारा अपने चैतन्य प्राण का स्वयं ने घात किया, वही हिंसा है।

मिथ्यात्व-रागादिक ेउ त्पत्तिह ेि हंसाह ै उ नकीअ नुत्पत्तिरूपव ेतरागभावह े अहिंसा है। यह जिनागम में हिंसा-अहिंसा का संक्षेप में लक्षण कहा है।

प्रश्न—यह आत्महिंसा किस प्रकार बन्द हो ?

उत्तर—मैं चैतन्यभाव ही हूँ। चैतन्य-प्राण से शाश्वत् जीवन जीनेवाला मैं हूँ; मेरे चैतन्यभाव में अन्य किसी का कार्य नहीं और रागादि भाव भी मेरे चैतन्य का कार्य नहीं—इसप्रकार शुद्ध चैतन्यभावरूप ही अपने को मानना, जानना, अनुभव करना-यह अहिंसा धर्म है। उसमें ही स्व-चैतन्यप्राण की रक्षा है, ऐसा अनंत ज्ञानियों को भी मान्य है।

प्रश्न—पर जीवों को मारने का भाव तो अलग रहा, किंतु परजीवों को मैं बचा सकता हूँ, रक्षा कर सकता हूँ, ऐसा मानने में क्या दोष ?

उत्तर—वस्तु स्वभाव को भूल जानेरूप मिथ्यामान्यता का महापाप है। कारण कि ऐसी मान्यता द्वारा अपने विशुद्ध चैतन्य-प्राण का नाश होता ही है। जीव चेतनाभावरूप है, उसका कार्य ज्ञायाकरूप चेतने-जानने का ही है, ऐसा न मानकर पर का कर्ता और परजीवों के जीवन का स्वामी बना। पर को बचाने का जो रागरूपी कार्य चेतन में मानता है, वह वीतरागी निज चैतन्यप्राण के नाशरूप हिंसा करता है, वह अधर्म है।

प्रश्न—वह अधर्म—हिंसा कैसे न हो ?

उत्तर—शुभराग से भी भिन्न पूर्ण चैतन्यभाव, वही मैं हूँ। मेरे चैतन्य को टिकने-जीने

के लिये राग की आवश्यकता नहीं है अर्थात् चैतन्य को राग के साथ एकत्व नहीं है। चैतन्यप्राण से शाश्वत् जीनेवाला मैं हूँ, राग से जीनेवाला मैं नहीं। अरैर पर की रक्षा-बचाव करने का जो शुभराग या कोई भी राग करने का कार्य मेरे चैतन्य में नहीं है। कारण कि चेतना लक्षणवाला जीवतत्त्व मैं और शुभाशुभ आस्रवतत्त्व भिन्न ही हैं। आस्रव तो बंधन का कारण है। आस्रव अंशमात्र भी परमार्थ ऐसा जीवतत्त्व नहीं है, अतः जीव उसका कर्ता नहीं है। इसप्रकार अपने को भेदज्ञान द्वारा शुद्ध चैतन्यभावरूप ही मानना, जानना अनुभव करना वह अहिंसा धर्म है, उसमें चैतन्य जीवन की रक्षा है। ऐसे परमार्थधर्म—भूतार्थधर्म सहित जीव को जो शुभराग आता है, उसमें हेयबुद्धि होने से व्यवहार में धर्म कहा है।

हिंसा का भाव हो या दया का भाव हो, वह रागभाव चैतन्य में से प्रगट होता नहीं। स्व-पर को जाने, वह चेतन; न जाने, वह अचेतन। हिंसा का पापभाव या दया आदि का पुण्यभाव, यह दोनों भाव चैतन्यभाव से विरुद्ध जाति के हैं; इन विरुद्ध भावों का काम चैतन्य में मानना, वह चैतन्य की हिंसा है, और उन विरुद्ध भावों से अपने को भिन्न रखकर आत्मा को (अपने को) चैतन्यरूप स्थिर रखना अहिंसा है। वह अहिंसा अपने आधीन होने से स्वयं कर सकते हैं।

अहिंसा धर्म के लिये यह जैन सिद्धांत है कि—

शुभ या अशुभ किसी भी राग का कर्तृत्व हिंसा है।

वीतरागी-चेतनभाव में आत्मा का निश्चल रहना अहिंसा है।

सर्वज्ञ वीतराग ने और सभी सम्यग्ज्ञानियों ने ऐसी अहिंसा कही है।

अहिंसा मोक्ष का कारण है, इसलिये यह अहिंसा परमधर्म है।

अहिंसा धर्म की जय!

जैसे मिले हुए दूध और जल में से हंस जल को छोड़कर दूध को ग्रहण करता है, उसीप्रकार दूध और जल की भाँति संसार और स्वसम्यग्ज्ञान के मिले हुए होने पर भी उनमें से स्वसम्यग्दृष्टि हंस अज्ञानमयी संसार को छोड़कर स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाव को ग्रहण करता है।

अध्यात्म की वर्षा

- जड़ तथा चेतन पदार्थ किसी भी समय एकरूप नहीं होते, सदाकाल भिन्न-भिन्न ही रहते हैं।
- आत्मा जगत में अनंत हैं, प्रत्येक आत्मा स्वयं की परमात्म-शक्ति से परिपूर्ण है, ऐसा भान तथा अनुभव करने से आत्मा स्वयं परमात्मा हो जाता है।
- आत्मा का ज्ञान तथा अनुभव करना, यह धार्मिक क्रिया है, यह क्रिया राग से रहित होने के कारण मोक्ष को प्रदान करनेवाली है।
- आत्मा चेतनस्वरूप स्वतंत्र वस्तु है; शरीर यह जड़ है, आत्मा इससे भिन्न है, शरीर से आत्मा की क्रिया भी भिन्न है।
- बाहर के लक्ष्य से आत्मा जो शुभ-अशुभ वृत्तियाँ करता है, वे दु:खरूप हैं, उनसे कर्मों का बंध होता है, यह कर्म जड़ हैं; आत्मा इनसे भी भिन्न है।
- आत्मा स्वयं आनंदस्वरूप होते हुए भी स्वयं के अज्ञान के कारण दु:खी है। दु:ख इसकी अपनी दशा (पर्याय) में है। सच्चे आत्मज्ञान के द्वारा इस दु:ख-अवस्था का नाश और सुख-दशा को प्रगट कर सकता है; ऐसी सुख-दशा आत्मिक धर्म है।
- आत्मा का जिसने प्रत्यक्ष अनुभव किया है, ऐसे ज्ञानी ही अपने आत्मा के वैभव द्वारा आत्मा का शुद्धस्वरूप बतला सकते हैं। अन्य जीव त्याग का अभिमान भले ही करें, किंतु शुद्धात्मा को पहिचानते नहीं हैं।
- जिसप्रकार मानसरोवर का हंस, सच्चे मोती का चारा चरनेवाला है। वह कंकड़ तो नहीं चरता किंतु जुआर के दाने भी नहीं चरता; इसीप्रकार चैतन्य-सरोवर में निवास करनेवाला यह जीव-चेतन हंस, आनंदरूपी मोती का चारा चरनेवाला है। विषय-कषाय के अशुभ-पापभावरूप कंकड़ तो वह नहीं चरता किंतु शुभ विकल्परूपी चारे को भी नहीं चरता, यह तो अपने भेदज्ञान के बल द्वारा आनंदरूपी सच्चे मोती का चारा चरनेवाला है।

ज्ञानस्वरूप का अनुभव करनेवाले जीव

मोक्ष को साधते हैं

निश्चयक ाअ ाश्रयक रनेवालाअ र्थात्प रस ेि भन्नरूपइ ाानस्वरूपअ ात्माक ा अनुभव करनेवाले धर्मात्मा जीव ही मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं; तथा जो ऐसे आत्मा का अनुभव नहीं करते, केवल व्यवहार का ही आश्रय लेते हैं, ऐसे कोई भी जीव कभी भी मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकते। जैनशासन का यह परम सिद्धांत आचार्य भगवान ने समयसार के परिशिष्टरूप में समझाया है, और मोक्ष को साधने का एक ही अपरिवर्तित मार्ग जगत के जीवों को समझाकर उपकार किया है।

'णिच्छयणयासिदा मुणियो पावंति णिव्वायं'

अर्थात् निश्चयनय के आश्रय से ही ज्ञानीजन निर्वाण को प्राप्त करते हैं, इसलिये वह आश्रय करनेयोग्य है, तथा व्यवहारनय पराश्रित होने से उसके आश्रय से कोई भी जीव मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता, इसलिये वह छोड़ने लायक है।—ऐसा वस्तुस्वरूप समयसार गाथा २७२ से २७७ में प्रगट किया है; उसके ऊपर पूज्य श्री कानजीस्वामी का प्रवचन

❀ निश्चय अर्थात् स्वाश्रय... वह मोक्ष का कारण ❀

आत्मा का सहज स्वभाव एकरूप शुद्ध है, उसमें बंधन या परभाव नहीं है। ऐसा सहज स्वभाव, यह निश्चय है, तथा ऐसे स्वभाव का ही आश्रय करने से मुक्ति होती है। ऐसे शुद्ध स्वभाव का आश्रय लेने से पर का आश्रय छूट जाता है अर्थात् पर में एकताबुद्धि का अध्यवसाय छूट जाता है; उसीप्रकार पर के आश्रयरूप व्यवहार का भी त्याग हो जाता है। इसप्रकार निश्चय के आश्रय से व्यवहार का त्याग, यह मोक्ष का कारण है। निश्चय का आश्रय अर्थात् स्वभाव का आश्रय, उसमें शुद्ध सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आ जाता है।

❀ व्यवहार अर्थात् पराश्रय... वह बंध का कारण है ❀

निश्चय स्वभाव के आश्रय से रहित अकेले पराश्रयरूप जो व्यवहार श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र, वह कहीं मोक्ष के कारण नहीं; व्यवहार का आश्रय तो बंध का ही कारण है। निश्चय

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो कि मोक्ष के कारण हैं, उनका आश्रय शुद्ध आत्मा है। निश्चय से आत्मा का शुद्धस्वरूप पहिचानकर उसके आश्रय से श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र प्रगट करना मोक्ष का कारण है। ऐसा करने से ही मोक्ष होता है तथा इसके बिना मोक्ष नहीं होता।

स्वद्रव्य के आश्रय से मोक्ष होता है तथा परद्रव्य के आश्रय से संसार होता है, यह सिद्धांत है। शुद्धात्मा का जो अनुभव नहीं करते, शुद्धात्मा के अनुभव से होनेवाले निर्विकल्प सुख की जिनको खबर नहीं, जो परद्रव्य के आश्रय से केवल शुभाशुभ विकल्पों का ही अनुभव करते हैं, तथा ऐसे पराश्रित व्यवहार को ही मोक्ष का साधन मानते हैं, वह मिथ्यात्व का सेवन करते हैं। भाई! पराश्रयभाव में तो दुःख है, आकुलता है, कषाय है। चैतन्यस्वरूप आत्मा कषाय से रहित है, उसको जो कषाय-भाव से लाभ होना मानते हैं—मनवाते हैं, वह वीतरागभाव का पोषण करनेवाले नहीं किंतु कषाय का पोषण करनेवाले हैं, अर्थात् वीतराग शासन के वह शत्रु हैं। पर से भिन्न शुद्धज्ञानमय आत्मा का जो अनुभव करते हैं, वही वीतरागी शासन को समझकर मोक्ष को साधते हैं।

❀ निश्चय कैसा है ?—कि आत्मा के शुद्धस्वभाव के आश्रयरूप है, मोक्ष का कारण है।

❀ व्यवहार कैसा है ?—कि पर के आश्रयरूप है, बंध का कारण है। (भूमिकानुसार पर्याय में व्यवहार आता है, ज्ञान उसे जानता है किंतु श्रद्धा में सर्व व्यवहार को हेय मानता है। उसका अर्थ—व्यवहार का आश्रय करनेयोग्य नहीं मानता, जो व्यवहार का आश्रय करने से लाभ मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है, व्यवहार का होना, वह मिथ्यात्व नहीं है।)

इसलिये मुमुक्षु जीवों को परद्रव्यों से तथा परभावों से भिन्न ऐसे अपने एक ज्ञानभाव को पहिचानकर उसका आश्रय करना चाहिये; एवं पराश्रय के समय समस्त परभावों को अपने से भिन्न जानना। इसप्रकार निश्चय का आश्रय करना तथा स्वाश्रय के द्वारा व्यवहार के आश्रय का त्याग करना यही मोक्ष का कारण है।

❀ शुद्धात्मा के श्रद्धा-ज्ञान से रहित सम्यक्त्व चारित्र नहीं हो सकता ❀

निश्चयचारित्र वीतरागभावरूप है; वही मोक्ष का कारण है।

शुद्धात्मा के आश्रय से एकाग्रता, यह निश्चयचारित्र है तथा ऐसे निश्चयचारित्र का कारण सम्यग्दर्शन-ज्ञान है।

ऐसा सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान भी शुद्धात्मा के ही श्रद्धा-ज्ञानरूप है। शुद्ध आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान से रहित कभी भी निश्चयचारित्र नहीं हो सकता। पंच महाव्रत-तप आदि का शुभराग, वह कहीं निश्चयचारित्र का कारण नहीं; क्योंकि अज्ञानी को ऐसा शुभराग होते हुए भी शुद्धात्मा के श्रद्धा-ज्ञान नहीं होने से सच्चा चारित्र नहीं होता।

शुद्धात्मा के श्रद्धा-ज्ञान से रहित जीव भले ही पंचमहाव्रतरूप व्यवहारचारित्र का पूर्णतया पालन करता हो, समिति-गुप्ति में रहता हो, शील तथा तप सहित हो तो भी वह जीव चारित्र से रहित ही है; मोक्ष के कारणरूप सम्यक्चारित्र की उसको खबर नहीं है, शुभराग को ही मोक्ष का कारण समझता है। व्यवहारचारित्र होते हुए भी उसको मुक्ति नहीं होती—यह दृष्टांत देकर आचार्यदेव ऐसा सिद्धांत समझाते हैं कि पराश्रित ऐसा जो व्यवहारचारित्र है, वह मोक्ष का कारण नहीं है, शुद्धात्मा में एकाग्रतारूप जो निश्चयचारित्र है, वही मोक्ष का कारण है।—इसलिये मोक्षार्थी जीवों को निश्चय का आश्रय करना तथा व्यवहार का आश्रय छोड़ना चाहिये। पर के आश्रय से होनेवाले राग का कोई भी अंश मोक्ष का साधन नहीं; स्वभाव के आश्रय से होनेवाला वीतरागभाव ही मोक्ष का साधन है। इसलिये मोक्षार्थी जीवों को स्वभाव का आश्रय करना तथा पर का आश्रय छोड़ना चाहिये।—यह सिद्धांत है।

❀ ज्ञानस्वरूप आत्मा के ज्ञान से रहित सभी अज्ञान ❀

जिनेश्वरदेव द्वारा प्ररूपित शास्त्रों से जो विपरीत मानता है, उसको तो मिथ्यात्व की तीव्रता है। जिनेश्वरदेव द्वारा प्ररूपित सच्चे शास्त्रों में जैसा शुद्धात्मा का वर्णन किया है, वैसे शुद्धात्मा को श्रद्धा-ज्ञान-अनुभव में लिये बिना जो केवल शास्त्रों का ही अध्ययन करता है तो उसका ज्ञान भी पराश्रय में ही अटक हुआ है, उसको शुद्धात्मा का ज्ञान नहीं होने से सम्यग्ज्ञान नहीं है, उसका सभी ज्ञान, अज्ञानमय है, वह कहीं मोक्ष का कारण नहीं है। भले ही ग्यारह अंग का जानकार हो, तथापि जो शुद्धात्मा का आश्रय नहीं करता, उस जीव ने शास्त्र के अध्ययन का लाभ प्राप्त नहीं किया अर्थात् शास्त्रों ने जैसा ज्ञानस्वरूप आत्मा बतलाया, वैसा उसने पहिचाना नहीं। परभावों से भिन्न ज्ञान-आनंदमय वस्तु का ज्ञान, यह शास्त्र-अध्ययन

का सार है; इससे रहित शास्त्र-अध्ययन, वह नि:सार है; ऐसे शास्त्र-अध्ययन के द्वारा कहीं सम्यग्ज्ञान नहीं होता। सम्यग्ज्ञान, शुद्धात्मा के आश्रय से होता है; कहीं शास्त्र के आश्रय से ज्ञान नहीं होता। शास्त्र के आश्रय से तो पराश्रयभावरूप विकल्प उत्पन्न होते हैं, यह कहीं मोक्ष का कारण नहीं है।

❀ शुद्ध आत्मा को चेतनेवाली धर्मात्मा की ज्ञानचेतना ❀

अहा, 'ज्ञानचेतना'—जिसको विकल्प का अवलंबन नहीं, वह कहीं शास्त्र-अध्ययन के द्वारा प्राप्त होनेवाली नहीं। धर्मी की ज्ञानचेतना कहीं पर के आश्रय से परिणमन नहीं करती, शुद्ध-स्वद्रव्य के आश्रय से ज्ञानचेतना परिणमित हुई है। यह चेतना विकल्परूप नहीं, रागरूप नहीं, शास्त्र के अवलंबनरूप नहीं, यह तो शुद्ध-ज्ञानरूप परिणमित हुई है। शुद्धात्मा को चेतनेवाली ऐसी चेतना राग के द्वारा (-विकल्प के द्वारा) पहिचानी नहीं जा सकती। चैतन्यसूर्य आत्मा, अनंत किरणों से जगमगाता ज्ञानसूर्य है, उसमें से धर्म की ज्ञानचेतना प्रकाशमान हुई है, अन्य किसी का अवलंबन उसको नहीं है।

❀ जो राग को ही मोक्ष का कारण मानते हैं, उनको मोक्ष की चाह नहीं ❀

शुद्ध ज्ञानस्वरूप आत्मा को जिसने पहिचाना नहीं, वह पराश्रित शुभराग को मोक्ष का कारण मानता है। यहाँ तो कहते हैं कि राग को मोक्ष का कारण माननेवाले जीवों को वास्तव में मोक्ष की श्रद्धा ही नहीं है। मोक्ष की सच्ची श्रद्धा कब होती है? कि ज्ञानस्वरूप आत्मा को पहिचाने, तब मोक्ष की श्रद्धा होती है। आत्मा स्वयं ज्ञानमय है, तथा उसकी मोक्षदशा भी शुद्ध ज्ञानमय है, वह कहीं रागमय नहीं है। मोक्ष, वह ज्ञानस्वरूप आत्मा के ही आश्रय से उत्पन्न होनेवाली दशा है, वह कहीं पर के आश्रय से उत्पन्न नहीं होती। जो केवल पराश्रयभाव का ही अनुभव करते हैं तथा उससे भिन्न ज्ञानमय आत्मा का अनुभव नहीं करते, वह मोक्ष तथा मोक्ष के कारण को नहीं जानते अर्थात् उनको मोक्ष की श्रद्धा नहीं है। वह तो बंध के कारण को ही (व्यवहार के आश्रय को ही) मोक्ष का कारण मानकर सेवन कर रहे हैं, चाहे अनेक शास्त्रों का ज्ञाता हो जाये किंतु शास्त्र का आश्रय छोड़कर ज्ञानस्वभाव का आश्रय नहीं करता; इसलिये अज्ञानी ही रहता है। शास्त्र का फल तो यह था कि भिन्न वस्तुस्वरूप ज्ञानमय आत्मा को ज्ञान से चेतना-अनुभव करना चाहिये था; ऐसे ज्ञान से रहित ग्यारह अंग का अध्ययन भी लाभ से रहित

है। शास्त्र-अध्ययन का लाभ तो तब कहा जाता है कि राग से पार अंतर की ज्ञानचेतना वस्तु का पोषण हो, क्योंकि शास्त्र ऐसे शुद्ध-आत्मा को बतलाते हैं। एकत्व-विभक्त ऐसे शुद्ध आत्मा को दर्शाने के लिये आचार्यदेव ने इस समयसार की रचना की है। अहो! समयसार में निजवैभव के द्वारा आचार्यदेव ने शुद्ध आत्मा बतलाया है। यह समयसार तो 'भरतक्षेत्र का राजा' है।

❀ ज्ञानचेतना प्रगट कैसे हो ? ❀

अरे, राग तथा ज्ञान की भिन्नता का अनुभव जिसको नहीं हुआ, उसको यह शास्त्र-पठन किस काम का ? राग की भिन्नता से रहित ज्ञान—इसको ज्ञान कौन कहता है ? यह तो अज्ञान है। शास्त्रों की वाणी के ओर के झुकाव से कहीं ज्ञानचेतना प्रगट नहीं होती, ज्ञानभंडार से परिपूर्ण आत्मा के आश्रय से ही ज्ञानचेतना प्रगट होती है। इसलिये मोक्षार्थियों को ज्ञानस्वरूप आत्मा को पहिचानकर उसका आश्रय करना, तथा पर के आश्रय की बुद्धि का त्याग करना। शास्त्र भी ऐसा ही उपदेश देते हैं कि अंतर्मुख होकर के तू तेरे ज्ञानस्वरूप का आश्रय कर। ऐसा आश्रय जो करता है, उसका ही शास्त्र-पठन सच्चा कहलाता है, 'शास्त्र-पठन का लाभ' उसको हुआ कहा जाता है।

❀ शास्त्र पढ़कर क्या करना ? ❀

कि परभावों से भिन्न शुद्ध ज्ञानमय आत्मवस्तु है—उसको पहिचानकर उसका अनुभव करना। श्रीमद् राजचंद्रजी भी कहते हैं कि—

जिनपद निजपद एकता, भेदभाव नहीं कोई;
लक्षार्थ उस तत्त्व के कहे शास्त्र सुखदाई।

जिनपद कहो या आत्मा का निजपद कहो, इसमें परमार्थ से किंचित् भी अंतर नहीं है; ऐसे शुद्ध निजपद का लक्ष करने के लिये शास्त्रों की रचना की गई है तथा यही सुख को प्रदान करनेवाला है। भले ही अनेक शास्त्रों का अभ्यास नहीं हो, लिखते-पढ़ते भी भले ही न आता हो; फिर भी मेंढ़क तथा सिंह इत्यादि जीव भी अंतर के वेदन में ज्ञान तथा राग को भिन्न करके अपने को शुद्धज्ञानमय अनुभव करते हैं, तो उन जीवों ने सभी शास्त्रों के फल को प्राप्त कर लिया है। शास्त्र के पढ़ने का लाभ उनको प्राप्त हो गया है, क्योंकि ज्ञान तो शुद्ध आत्मा के

आश्रय से तन्मय है, वह कहीं शास्त्र पढ़ने के विकल्प के आश्रित नहीं है। अहो, निरालंबी ज्ञानमार्ग! उसमें पर का आश्रय कैसा?

❀ नित्यज्ञानचेतना मात्र आत्मवस्तु, उसका अनुभव करे, वह ज्ञानी ❀

आत्मा की ज्ञानचेतना अंतर में समाविष्ट है, उसका कार्य बाहर में प्रदर्शित नहीं होता। आनंदमय आत्मा का स्वानुभव, वह ज्ञानचेतना का फल है; किंतु ज्ञानचेतना प्रगट हो, तब बाहर का जानपना या शास्त्रपठन भी अधिक बढ़ जाये—ऐसा कहीं उसकी माप नहीं है; बाहर के जानपने से ज्ञानचेतना की तुलना नहीं की जा सकती।

ज्ञानचेतना की गंभीरता और महिमा कैसी है? ज्ञानचेतना तो अंतर में अपने आत्मा को चेतनेवाली है। ज्ञानचेतना के फल में शास्त्रों के शब्दों का अर्थ करना आ जाता हो, ऐसा कहीं ज्ञानचेतना का फल नहीं है। आत्मा के अनुभव का समाधान प्राप्त हो जाये—ऐसी ज्ञानचेतना है। अज्ञानी को राग के अनुभव से ११ अंग ९ पूर्व जितने शास्त्र पढ़ने पर भी ज्ञान के अनुभवरूप ज्ञानचेतना प्रगट नहीं होती। इसप्रकार शास्त्र-अध्ययन के ऊपर से ज्ञानचेतना का माप नहीं है। ज्ञानचेतना तो अंतर में आत्मा को चेतनेवाली है; ज्ञानस्वरूप आत्मा को जो चेते-अनुभव करे, वह ज्ञानचेतना। ज्ञानचेतना का कार्य अन्तर में होता है, बाहर में नहीं।

कोई जीव शास्त्रों के अर्थ को धारावाही बोलता है, इसलिये उसको ज्ञानचेतना प्रगट हो गई—ऐसा उसका माप नहीं है; क्योंकि किसी ज्ञानी को उसप्रकार की भाषा का योग नहीं भी होता है, अथवा कदाचित् बाहर का विशेष ज्ञान का विकास भी नहीं होता है; किसी को ज्ञानचेतना के साथ वैसा विशेष ज्ञान का विकास भी होता है तो भी ज्ञानचेतना का वह चिह्न नहीं है; ज्ञानचेतना का कार्य तो विकल्प तथा पराश्रय से पार ऐसी अंतर की अनुभूति में है। ज्ञान को अंतर में ले जाकर जिसने राग से भिन्न स्वरूप को अनुभव में ले लिया है, उस जीव को अपूर्व आनंदमय ज्ञानचेतना अंतर में प्रगट हो गई है। इसकी पहिचान करना भी अपूर्व बात है, साधारण जीवों को इसकी पहिचान करना कठिन है।

❀ ज्ञानचेतना वह सत्यधर्म है; शुभराग सत्यधर्म नहीं है ❀

ज्ञानचेतना अर्थात् शुद्धात्मा का अनुभव करनेवाली चेतना, वह मोक्ष का साधन है, किंतु शुभराग का अनुभव, वह कहीं मोक्ष का साधन नहीं है। अज्ञानी ज्ञानेचतना का तो अनुभव

करता नहीं किंतु राग के फलरूपी कर्मफलचेतना का ही अनुभव करता है। ज्ञानचेतना का अनुभव, वह भूतार्थ धर्म है अर्थात् वही सच्चा धर्म है, वही मोक्ष का कारण है। ऐसे भूतार्थ धर्म की अज्ञानी जीव श्रद्धा नहीं रखते, केवल रागमय शुभकर्मरूप अभूतार्थ धर्म की ही श्रद्धा रखते हैं, उसी को मोक्ष का साधन मानते हैं किंतु वह शुभकर्म तो भोग के हेतु हैं, संसार के हेतु हैं, उनके फल में किंचित् भी आत्मा का अनुभव नहीं होता। इसप्रकार निश्चयधर्म की श्रद्धा से रहित वह जीव व्यवहारधर्म की श्रद्धा करते हुए भी मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिये आचार्यदेव कहते हैं कि भूतार्थस्वभाव का आश्रय करनेयोग्य है तथा व्यवहारधर्म के आश्रय से लाभ मानने की श्रद्धा त्याग करनेयोग्य है।—इसप्रकार मोक्ष की साधना की जाती है।

नित्य-ज्ञानचेतनारूप वस्तु, वह भूतार्थ है। उसकी श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन है।

प्रश्न—आत्मा वस्तु को 'ज्ञानचेतनामात्र' कहा, तो आनंद, श्रद्धा इत्यादि कहाँ गये ?

उत्तर—'ज्ञानचेतनामात्र' कहते ही रागादि विरुद्ध भावों का अभाव कहा है, किंतु ज्ञान के साथ आनंद-श्रद्धा इत्यादि सर्व गुण ज्ञानचेतना में समाविष्ट हैं। ऐसी ज्ञानचेतनारूप आत्मवस्तु की जिसको श्रद्धा नहीं, वह जीव राग के अनुभव में अटका हुआ है, अर्थात् भोग के कारणरूप शुभ कर्मों की ही श्रद्धा करता है, वह व्यवहारधर्म का सेवन करता हुआ संसार में नवमीं ग्रैवेयक तक के भोग मात्र को भले ही प्राप्त कर ले किंतु आत्मा के सच्चे सुख को प्राप्त नहीं कर सकता, कर्मबंधन से रहित ऐसे मोक्ष को भी प्राप्त नहीं कर सकता; इसप्रकार व्यवहार के आश्रय से मुक्ति नहीं होने के कारण उसका निषेध है; शुद्ध आत्मा के आश्रय से ही मुक्ति हो सकती है, इसलिये वीतराग कथित धर्म में प्रारंभ से ही निश्चय का आश्रय करने जैसा है।

भाई ! राग के अनुभव से तो चार गति के दुःख प्राप्त होंगे; मोक्ष का सुख तो राग से रहित ज्ञानचेतना के अनुभव से ही प्राप्त होगा। अज्ञानी कहता है कि पुण्य, यह मोक्ष का कारण हो सकता है ! ज्ञानी कहते हैं कि पुण्य तो संसार के भोग का कारण है, इसके फल में भोग की सामग्री का संयोग प्राप्त होगा; किंतु इसके फल में चैतन्य के आनंद का अनुभव प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिये हे भाई ! समस्त राग के आश्रय की बुद्धि का त्याग करके ज्ञानमात्र आत्मवस्तु का अनुभव प्राप्त कर।

चार गति दुःख से डरे तो तज सब परभाव;
शुद्धातम चिंतन करी शिवसुख का ले लाभ।

अमरकुमार की अमर कहानी

[नमस्कार मंत्र का प्रभाव]

[जिसमें पंच परमेष्ठी भगवंतों को नमस्कार किया जाता है, ऐसा पंच नमस्कार मंत्र यह जैनियों का सर्वमान्य महामंत्र है। जीवन-मरण के किसी भी समय जैन बालक इस मंत्र को भूलता नहीं। श्री कानजीस्वामी (अंतरिक्ष पार्श्वनाथ) पधारे, तब पंचकल्याणक-महोत्सव के समय कारंजा के छोटे-छोटे बालकों ने एक अति भाववाही अभिनय के द्वारा नमस्कार मंत्र का प्रभाव दिखलाया था, इस नाटक का नाम था, 'अमरकुमार की अमर कहानी'। पन्द्रह हजार दर्शक यह दृश्य देखकर प्रभावित हुए थे। इस कहानी का संक्षिप्त वर्णन यहाँ पर दिया जा रहा है।]

(१) जंगल में एक जैन गुरु पंच परमेष्ठी के ध्यान में, आत्मा के चिंतन में मग्न होकर बैठे हैं। वातावरण एकदम शांत है। इस समय अमरकुमार नाम का छह वर्ष का निर्धन किंतु संस्कारी बालक इस जंगल में आता है। जैन गुरु को देखकर हर्षित होकर वंदन करता है। गुरु ध्यान में से उठकर आशीर्वाद सहित उसको नमस्कार मंत्र प्रदान करते हैं। अमरकुमार अत्यंत श्रद्धा सहित आदरपूर्वक प्रयोजनभूत अर्थसहित मंत्र को ग्रहण करता है। भक्तिपूर्वक प्रतिदिन स्मरण करता हुआ कितना ही समय व्यतीत हो जाता है।

(२) नगर का राजा एक किले का निर्माण करवा रहा था; किंतु निर्माण का कार्य पूर्ण न होकर बारंबार खंडित हो जाता है, टूट जाता है। किले को बारंबार गिरते देखकर राजा को किसी अज्ञानी गुरु ने सलाह दी कि किसी एक बालक का बलिदान दिया जावे तो किले का कोट संपूर्ण हो। मूर्खतावश राजा ने भी उस सलाह को स्वीकार करके बलिदन के लिये बालक की खोज प्रारंभ कर दी।

राजा की आज्ञा से नगर में घोषणा कराई गई कि—जो कोई व्यक्ति किले के कोट की

पूर्णता के लिये बलिदान हेतु अपना पुत्र देगा, उसको राज्य की ओर से सम्मानित किया जायेगा और पुत्र के बराबर सुवर्णमुदाएँ दी जायेंगी।

(३) अमरकुमार के पिता अत्यंत दरिद्र थे; उनके आठ पुत्र थे; सबसे छोटा अमरकुमार था। कुटुम्ब का निर्वाह अत्यंत कठिनता से होता था। अमरकुमार का पिता उक्त घोषणा सुनता है; लोभ के वशीभूत होकर विचार करता है कि अमरकुमार राजा को सौंप दूँ तो मेरी दरिद्रता दूर हो जाये। ब्राह्मण घर आकर यह बात अपनी स्त्री से कहता है कि अपना छोटा लड़का दे दें। उसकी पत्नी का मातृहृदय पुत्रवध की बात सहन नहीं कर सकता और ऐसा नहीं करने के लिये अत्यंत दीनता से मना करती है, किंतु पिता का पत्थर-हृदय पिघलता नहीं। इतने में अमरकुमार का बड़ा भाई भी आकर पिता की बात का समर्थन करके कहता है कि—हे माता! तू व्यर्थ की चिंता मत कर। हम आठ-आठ भाई हैं, इनमें से एक को देने से तेरा क्या जानेवाला है; एक पुत्र के देने पर भी तेरे सात पुत्र तो रहेंगे एवं जीवनभर की दरिद्रता दूर हो जायेगी। इसप्रकार वे पिता-पुत्र क्रूर चित्त से निर्दयतापूर्वक अमरकुमार को बलिदान के लिये देना निश्चित कर लेते हैं। उसकी माता उक्त निर्णय से मूर्छित हो जाती है।

जिसके हृदय में पंचपरमेष्ठी का नमस्कार-मंत्र दृढ़ता से अंकित हो गया है—ऐसा वह निर्दोष बालक अमरकुमार भी वहाँ आ जाता है, अत्यंत धैर्यपूर्वक तथा वैराग्यभाव से माता को आश्वासन देता है कि हे माता! तू शोक का त्याग कर! पंचपरमेष्ठी मेरे हृदय में विराजमान हैं, फिर भय कैसा? हे माता! राजा रक्षक होते हुए भी स्वयं जब भक्षक होने को तैयार है, जन्मदाता पिता भी स्वयं जब सुवर्ण के टुकड़ों के लिये मुझे बेचना चाहता है, तब तू शोक क्यों करती है? यह संसार ही ऐसा है, इसमें जीव को पंचपरमेष्ठी के अतिरिक्त कोई भी शरण नहीं है। मेरे देह के बलिदान से सभी सुखी हो जाते हैं तो इससे उत्तम कार्य क्या हो सकता है? मैं राजा के पास जाता हूँ। पंचपरमेष्ठी का मंत्र मेरे पास है तथा तू भी इस मंत्र को अपने हृदय में धारण करना।—ऐसा कहकर नि:शंकता से बालक राजा के पास जाता है।

(४) राजा की आज्ञा के अनुसार बालक अमरकुमार को वधस्तंभ के ऊपर ले जाया जाता है। दो चांडाल नग्न तलवार लेकर वध के लिये तैयार होते हैं—किंतु अत्यंत शांत निर्दोष बालक को देखकर उनका हृदय गद्‌गद् हो जाता है, आँखें अश्रुभीनी हो जाती हैं, हाथ

कम्पायमान होने लगते हैं। तब बालक यह देखकर उनसे कहता है कि भाइयो ! मेरे पिता ने धन के लिये मुझे बेच दिया, उसको दया नहीं आई; राजा जो कि प्रजा का रक्षक कहलाता है, उसने भी मेरा वध करने की आज्ञा दे दी है तो अब तुम क्या विचार कर रहे हो ? तुम अपने कर्तव्य का पालन करो। कुछ देर ठहरो तो... अपने गुरु के दिये हुए इष्ट मंत्र (पंच नमस्कार-मंत्र) का स्मरण कर लूँ... फिर तुम...

ऐसा कहकर बालक वधस्तंभ के समीप पहुँच जाता है; मस्तक झुकाकर बलिदान के लिये तैयार हो जाता है... तथा अति शांतभाव से पंचपरमेष्ठी का स्मरण करता है, नि:स्तब्ध वातावरण उत्पन्न हो जाता है—केवल नमस्कार मंत्र का मधुर नाद सुनाई देता है।

धड़ाक्..... धड़ाक्..... धड़ाक्.....!

अचानक आकाश में से आवाज आती है, फाँसी के मंच के स्थान पर सिंहासन की रचना हो गई; देव पुष्पवृष्टि करने लगे; तथा अमरकुमार का बहुमान किया। सभी ओर नमस्कार मंत्र का प्रभाव फैल गया। राजा ने क्षमा माँगी, जैनधर्म का स्वीकार किया। कसाई लोगों ने हिंसा का त्याग करके जैनधर्म धारण किया। अमरकुमार के पिता तथा भाई को भी अत्यंत पश्चात्ताप हुआ; माता अत्यंत प्रसन्न हुई। अमरकुमार की अमर कहानी तथा नमस्कार मंत्र का प्रभाव देखकर सर्वत्र जय-जयकार हो गया। अंत में असार संसार से विरक्त होकर अमरकुमार ने अपने आत्महित का मार्ग ग्रहण किया।

हे जीव! अपनी पर्याय में अपने स्वद्रव्य को अनन्य जान

[अकेली पर्याय को न देख; पर्याय में अनन्य ऐसे द्रव्य को देख]

(समयसार गाथा ३०८ से ३११ पर प्रवचन)

द्रव्य और उस-उस काल की पर्याय को अनन्यपना है; अर्थात् मेरी पर्याय को मेरे द्रव्य के साथ एकता है—इसप्रकार जहाँ अपने सर्वज्ञस्वभावी द्रव्य के साथ पर्याय की एकता का निर्णय किया, वहाँ सर्वज्ञस्वभाव से विरुद्ध ऐसे राग के साथ पर्याय की एकता न रही; अर्थात् भेदज्ञान हुआ; ज्ञानपर्याय राग से पृथक् होकर सर्वज्ञस्वभावसन्मुख हुई... अब उसे सर्वज्ञ होने में विघ्न नहीं आयेगा।

जीवद्रव्य तो सर्वज्ञस्वभावी है, उसमें जो पर्याय की एकता हुई, उस पर्याय में रागादि भाव का कर्तापना नहीं रहता।

अपनी ज्ञानपर्याय में अनन्यरूप से परिणमता हुआ जीव अपने पर्यायरूपी कार्य का कर्ता होता है, परंतु वह अन्य द्रव्य की पर्याय का कर्ता नहीं होता, उससे तो वह भिन्न है। अर्थात् परद्रव्य की अपेक्षा बिना अकेले स्वयं में ही कर्ता-कर्मपना है। जीव कर्ता और अजीव उसका कार्य—ऐसा किसी भी प्रकार नहीं बनता।

प्रत्येक द्रव्य अपने परिणाम से अनन्य है और दूसरे से वह भिन्न है। भिन्न पदार्थों के बीच कर्ताकर्मपना नहीं होता। कर्ता और कर्म अभिन्न होते हैं। भिन्न पदार्थ के साथ कर्ताकर्मपना माने, उसे भेदज्ञान नहीं होता।

पूर्व पर्याय को वर्तमान पर्याय का कर्ता या उत्पादक कहना, वह व्यवहार है; यहाँ तो पर्याय के साथ उस काल तादात्म्यरूप ऐसे द्रव्य को ही कर्ता कहा है। उस द्रव्य पर दृष्टि करके एकाग्र होने से वह सुख और सम्यक्त्वादि कार्यरूप परिणमता है। सुख कहो या धर्म कहो, उस कार्य का उत्पादक आत्मा स्वयं ही है, क्योंकि आत्मा ही उसमें अनन्यरूप से वर्तता है। रागादिभाव सुख के साथ अनन्यरूप से नहीं वर्तते हैं, अथवा परद्रव्य आत्मा की सुख-पर्याय में तन्मय नहीं होते; आत्मा ही सुख पर्याय में तन्मय होकर सुखरूप परिणमता है, ऐसा निर्णय करके आत्मस्वभाव के सन्मुख होने से आत्मा अपनी सुख-पर्यायरूप से उत्पन्न हुआ और रागादि का अकर्ता हुआ। ज्ञान में ऐसे अकर्तापने की सिद्धि, वह मोक्ष का मार्ग है।

पर्याय और द्रव्य का उत्पाद्य-उत्पादक भाव है अर्थात् कर्ता-कर्मपना है, क्योंकि वे दोनों अभिन्न हैं, परंतु उपादान और निमित्त का उत्पाद्य-उत्पादकपना नहीं है अर्थात् उनमें कर्ता-कर्मपना नहीं है क्योंकि दोनों की अत्यंत भिन्नता है। यह सिद्धांत सब द्रव्यों में लागू पड़ता है क्योंकि सब द्रव्यों में अन्य द्रव्य के साथ उत्पाद्य-उत्पादक भाव का अभाव है; अर्थात् दो भिन्न द्रव्यों में कारण-कार्यभाव सिद्ध नहीं होता। अत: सारांश यह है कि जीव अपने शुद्ध ज्ञानभाव का ही कर्ता है और अजीव-कर्म का वह अकर्ता है। मेरे आत्मा को मेरी ज्ञानादि पर्यायों के साथ ही अनन्यपना है, पर की पर्याय से मेरा अनन्यपना नहीं है परंतु भिन्नपना है। ऐसा निर्णय करके शुद्धज्ञानरूप से परिणमते आत्मा को कर्म का बंधन नहीं होता। ऐसा कर्तापना अर्थात् शुद्ध ज्ञानमयपना वह जीव का स्वभाव है, और उस स्वभावरूप से तन्मय परिणमन, वह मोक्षमार्ग है। सर्वविशुद्धज्ञान अर्थात् आत्मा का ज्ञायकस्वभाव, उस स्वभाव में अभेद परिणमित ज्ञान रागादि का भी अकर्ता ही है। यहाँ जीव का अकर्तापन सिद्ध करना है, परंतु उसमें जीव-अजीव की क्रम-नियमित पर्यायों का उस-उस द्रव्य के साथ अनन्यपना बताकर आचार्यदेव ने अलौकिक न्याय से अकर्तापना सिद्ध किया है।

स्वसमयरूप जीव का वर्णन करते हुए दूसरी गाथा में कहा था कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप अपनी निर्मल पर्याय में स्थित होकर अनन्यपने से उपजता है, वही वास्तव में जीव है, जो रागादिभावों में स्थित है, वह जीव नहीं है। जीव ज्ञायकस्वभाव है, वह ज्ञायकस्वभाव वास्तव में रागरूप नहीं होता, इसलिये ज्ञायसन्मुख हुआ जीव राग का कर्ता नहीं होता। ज्ञायक की दृष्टि में उसे राग की अधिकता नहीं होती; अत: उसका विशुद्धज्ञान रागादि का अकर्ता ही है। ऐसे ज्ञायकस्वभाव का अकर्तापना पहिचानकर ज्ञानरूप से उत्पन्न हुआ; वह जीव धर्मी हुआ।

आत्मा का जो स्व-परप्रकाशक ज्ञायकभाव है, वह उत्पन्न होकर राग को उत्पन्न करे अथवा मिथ्यात्वादि कर्मों के बंधन में निमित्त हो—ऐसा नहीं है, उसीप्रकार वह कर्मों को निमित्त बनाकर उनके आश्रय से स्वयं विकाररूप उत्पन्न हो—ऐसा भी उसका स्वभाव नहीं है। वह तो ज्ञायक का अवलंबन लेकर क्रमबद्ध ज्ञायकभावरूप से ही उत्पन्न होता है। इसप्रकार स्वयं निमित्त होकर दूसरे को नहीं उत्पन्न करता, तथा दूसरे के निमित्त से स्वयं नहीं उत्पन्न होता, परंतु शुद्ध ज्ञानपरिणाम में ही तन्मयरूप से उपजता ऐसा जीव ज्ञानी है।

भाई! ज्ञायकस्वभावी आत्मा कर्ता होकर ज्ञानरूप उत्पन्न होगा या रागरूप उत्पन्न होगा? ज्ञायकभाव तो ज्ञानरूप ही उत्पन्न होगा। अतः ज्ञायकभाव राग का कर्ता नहीं है, ऐसा तू समझ, और ज्ञायकसन्मुख हो, जिससे निर्मल ज्ञान-श्रद्धा-आनंद आदि परिणाम होंगे।

ज्ञान-श्रद्धा-आनंद आदि परिणामरूप से कौन उत्पन्न होता है? जीव उत्पन्न होता है। वह जीव कैसा है? ज्ञानस्वभावी। ऐसा निर्णय करनेवाला अपने ज्ञायकस्वभाव का अवलंबन कर निर्मल पर्याय में तन्मयरूप से उत्पन्न होता है, परंतु राग में तन्मय नहीं होता। श्रद्धा-आनंद आदि निर्मल क्रमबद्धपर्यायोंरूप से 'राग' उत्पन्न नहीं होता परंतु ज्ञायकस्वभावी 'जीव' उत्पन्न होता है। ऐसे स्वभाव पर जिसकी दृष्टि है, उसे ही अकर्तापन और क्रमबद्धपर्याय का सच्चा निर्णय है और उसे क्रमद्धपर्याय निर्मल होती है। ज्ञायकस्वभाव के सन्मुख होकर अपने सम्यक्-श्रद्धा-ज्ञान तथा वीतरागभाव की पर्यायरूप से जो उत्पन्न हुआ, वह 'स्व-समय' है; और वह रागादि का अकर्ता है।

इसमें उपादान-निमित्त की स्पष्टता भी हो जाती है। ज्ञायकस्वभावरूप शुद्ध उपादान की ओर उन्मुख होने से मेरी पर्याय में ज्ञायकभाव का प्रभाव पड़ता है—ऐसा नहीं मानकर, निमित्त का प्रभाव पड़ता है—ऐसा मानता है तो, हे भाई! निमित्त की ओर का झुकाव छोड़कर अपने स्वभाव की ओर तू कब झुकेगा? ज्ञायकस्वभाव की ओर झुके, उसे कर्म का निमित्त नहीं रहता। अज्ञानी को उसके गुणों की विपरीतता में कर्म का निमित्त भले हो, परंतु ज्ञानी तो स्वयं ज्ञायकस्वभाव की ओर झुका है; इसलिये ज्ञाताभावरूप ही उत्पन्न हुआ है, रागरूप या आस्रव-बंधरूप से वह उत्पन्न नहीं होता, अतः उसे तो कर्म का निमित्त भी नहीं है।

'देसिया सुत्ते' आचार्यदेव कहते हैं कि हे भाई! सूत्र में तो भगवान ने परिणामों को स्वयं अपने द्रव्य से ही अनन्य बतलाया है, परंतु पर के साथ उनका संबंध नहीं बतलाया, तो फिर पर का कर्तापना कहाँ से हो? एक द्रव्य का कर्ता कोई दूसरा द्रव्य हो, ऐसा तो भगवान के सूत्र में नहीं कहा है। 'दवियं जं उप्पज्जइ गुणेहिं तं तेहिं जाणस्सु अणण्णं'—ऐसा कहकर, पर्याय-पर्याय में अभेदरूप से तेरा ज्ञायकस्वभाव ही परिणम रहा है, उसे तू देख! ऐसा कहा है। संवर अधिकार में भी 'उवओगे उवओगो...' उपयोग में उपयोग है, ऐसा कहकर संवर की जो निर्मलदशा प्रगट हुई, उसके साथ आत्मा का अभेदपना बताया, अर्थात् ज्ञायकद्रव्य में अभेदता से ही सम्यग्दर्शनादि संवरदशा प्रगट होती है—ऐसा बताया।

प्रतीति के प्रताप से परमात्मा और प्रतीति के अभाव से परिभ्रमण

(१) आत्मा ज्ञानस्वभावी है, उसके ज्ञान में सर्वज्ञ होने की शक्ति है। ज्ञान का सर्व परभावों से भिन्न अनुभव करना, वह सर्वज्ञ होने का उपाय है।

(२) जीव स्वयं अपने ऐसे परिपूर्ण सामर्थ्य की प्रतीति जब तक नहीं करे, तब तक आत्मा की सम्यक् प्रतीति नहीं होती।

(३) 'मैं ज्ञानस्वभाव हूँ' ऐसी प्रतीति के प्रताप से आत्मा स्वयं परमात्मा होता है; और उस प्रतीति के अभाव में आत्मा संसार में परिभ्रमण करता है।

(४) 'मैं ज्ञानस्वभाव हूँ' ऐसी प्रतीति करके जब आत्मा उसे ध्याता है अर्थात् ध्यान में उस ज्ञानस्वभाव को ही ग्रहण कर उसमें तन्मयरूप से लीन होता है, तब तुरंत ही परम आनंदमय केवलज्ञान प्रगट होता है।

(५) वे केवलज्ञानी भगवान संपूर्ण अतीन्द्रिय हुए हैं। उनको इन्द्रियों के साथ संबंध का अभाव होने से वे इन्द्रियों से पार हैं।

(६) सर्वज्ञ का ज्ञान सर्व आत्मप्रदेशों में पूर्णरूप से विकसित हो गया है, कोई आवरण नहीं रहा है—जो किसी भी ज्ञेय को जानने से उन्हें रोके। वे निर्विघ्न विकसित निज शक्ति से सर्व ज्ञेयों को एकसाथ स्पष्ट प्रत्यक्ष जानते हैं।

(७) ज्ञान की भाँति भगवान के सुख का भी इसीप्रकार समझ लेना चाहिये। अतीन्द्रिय हुए वे सर्वज्ञ भगवान, भोजनादि इन्द्रियविषयों के बिना ही अपने अतीन्द्रिय परम सुख का अनुभव करते हैं। सुख के अनुभव में विघ्न करनेवाला कोई कर्म उनको नहीं रहा। स्वाधीनरूप से वे पूर्ण सुखरूप परिणमित हुए हैं; अतः सुख के लिये दूसरे किन्हीं विषयों की अपेक्षा उन स्वयंभू परमात्मा को नहीं है।

(८) सर्वज्ञता की प्रतीति का ऐसा प्रताप है कि वह प्रतीति करते हुए स्वसन्मुखता होकर

आत्मप्रतीति हो जाती है और सम्यग्दर्शन होता है। उस प्रतीति का प्रताप उसे अल्प काल में सर्वज्ञ परमात्मा बना देता है।

(९) सर्वज्ञता की प्रतीति के अभाव में आत्मा अपने ज्ञानस्वभाव को भूलकर रागादि विभाव का ही कर्ता होकर संसार में रुलता है।

(१०) इसप्रकार प्रतीति के प्रताप से यह आत्मा परमात्मा बन जाता है और प्रतीति के अभाव में परिभ्रमण होता है। अतः हे जीवो! सर्वज्ञस्वभावी आत्मा की प्रतीति करो और उसकी अचिंत्य महिमा जानकर उसमें स्थिर हो—ऐसा संतों का उपदेश है।

मोक्ष का मार्ग

एकबार एक मुमुक्षु जीव को विचार आया कि अरे, इस संसार में अनादि से मैं दुःखी हूँ; उस दुःख को दूर कर आत्मा का हित और सुख मुझे प्राप्त करना है। वह हित किसप्रकार हो?

—ऐसा विचारकर वह जीव वन में गया; वन में बहुत से मुनिराज आत्मा के ध्यान में लीन थे, वे अत्यंत शांत थे, अहा! उनकी सौम्य शांत मुद्रा... मानो मोक्ष का मार्ग ही दिखला रही थी!

मुमुक्षु जीव ने उन्हें वंदन कर बहुत ही विनयपूर्वक पूछा—प्रभो! आत्मा के हित का उपाय क्या है? मोक्ष का मार्ग क्या है?

आचार्य महाराज ने कृपापूर्वक कहा—हे भव्य!

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह मोक्षमार्ग है।

मुनिराज के श्रीमुख से इसप्रकार मोक्षमार्ग सुनकर वह मुमुक्षु अति प्रसन्न हुआ, और भक्तिपूर्वक सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की आराधना करने के लिये तैयार हुआ।

बंधुओ! आपको भी उस मुमुक्षु की भाँति मोक्षमार्ग को पहिचानना चाहिये और उसकी आराधना करनी चाहिये।

विविध समाचार

सोनगढ़ में अभूतपूर्व ज्ञानयज्ञ—जैनधर्म शिक्षण-शिविर

तारीख ७-८-७० से २६-८-७० तक करीब ७०० की संख्या में जिज्ञासुओं ने दूर-दूर से आकर विशेषरूप से अध्यात्म-लाभ लिया।

उत्तम कक्षा में जैनतत्त्व मीमांसा, जैनसिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला; मध्यम कक्षा में द्रव्यसंग्रह, छहढाला; जघन्य में छहढाला, जैनसिद्धांत प्रवेशिका पढ़ाई गई; प्रतिदिन दो बार पूज्य स्वामीजी द्वारा प्रवचन, रात्रि को शंका-समाधान, तथा दो घंटा शिक्षण-शिविर में पढ़ाई का कार्यक्रम था। एक रात्रि को भावनगर पंचकल्याणक-महोत्सव की फिल्म बताई गई। सबमें महत्वपूर्ण बात समयसार गाथा ३२० की श्री जयसेनाचार्यकृत संस्कृत टीका का हिन्दी अनुवाद कराकर १५०० प्रति छपवाई, उस पर पूज्य स्वामीजी ने अतिगंभीर और सूक्ष्म रहस्यपूर्ण १२ प्रवचन किये, उस समय सभी श्रोतागण अपने को धन्य मानते हुए अत्यंत रुचिपूर्वक सुनते थे।

कक्षाओं में पढ़नेवालों की संख्या रजिस्टर में ५५० थी। अंतिम दिन आभारदर्शन किया गया, सभी को भेंटस्वरूप पुस्तकें दी गईं। कक्षा में श्री रामजीभाई, श्री खेमचंदभाई, श्री छोटाभाई रायचंद, श्री नवलचंदभाई तथा श्री चिमनलालभाई द्वारा पढ़ाई होती थी; बड़े भारी उत्साह के साथ यह चिरस्मरणीय कार्यक्रम संपन्न हुआ। —ब्रह्मचारी गुलाबचंद जैन

❀ ❀ ❀

प्रतापगढ़ (राजस्थान) में अपूर्व धर्म-प्रभावना

मंदसौर में तारीख ११-७-७० से १८-७-७० तक अष्टाह्निका पर्व में अपने प्रभावशाली आध्यात्मिक प्रवचनों द्वारा अपूर्व धर्मप्रभावना के पश्चात् श्री पंडित हिम्मतभाई बंबईवाले तारीख १९-७-७० को प्रतापगढ़ पधारे और हमारे यहाँ मानों धार्मिक सप्ताह का प्रारंभ हुआ। आप प्रतिदिन प्रातःकाल ७.०० से ८.०० बजे तक श्री समयसार कर्ताकर्म अधिकार पर सरल भाषा में भावपूर्ण प्रवचन करते थे; जिसमें लोग अच्छी संख्या में उपस्थित रहते थे।

दोपहर को २.०० से ३.०० बजे तक लघु जैनसिद्धांत प्रवेशिका पढ़ाते थे, जिसमें द्रव्य के छह सामान्य गुण एवं छह द्रव्यों का स्वरूप दृष्टांतों सहित समझाते थे; जिसे सुनकर सब लोक बड़े प्रसन्न होते थे और धार्मिक अध्ययन की ओर रुचि जागृत होती थी। सायंकाल ३.०० से ४.०० बजे तक शंका-समाधान एवं तत्त्वचर्चा का कार्यक्रम रहता था और अनंक प्रकार के प्रश्न पूछे जाते थे। पंडितजी सबको शास्त्राधार पूर्वक सचोट उत्तर देकर लोगों का समाधान करते थे। रात्रि को ८.०० से ९.०० बजे तक मोक्षमार्गप्रकाशक के सातवें अधिकार पर प्रवचन होता था। जिसमें जीव की सात तत्त्वों संबंधी भूलें आदि विषयों पर विवेचन करते थे।

—इसप्रकार आठ दिन तक विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा पंडितजी ने प्रतापगढ़ की जनता में एक नवीन धार्मिक चेतना का संचार किया। लोग कहते थे कि हमने ऐसा धार्मिक वातावरण पहले कभी नहीं देखा था।

तारीख २६-७-७० रविवार की रात्रि को शास्त्रसभा के पश्चात् विशाल जनसमुदाय के बीच श्रीमान् सेठ सोभागमलजी तलाटी की अध्यक्षता में पंडितजी को सम्मान-पत्र भेंट किया गया। यह सब प्रोग्राम प्रतिदिन भाईजी के मंदिर में होता था। तारीख २६ के प्रातःकाल पंडितजीद ाहोदके ि लयेर वानाह ुए ाप ्तापगढ़क ीस माजन ेभ ावभीनीह ार्दिर्का वदाई दी—जिसमें स्त्री-पुरुष एवं बालक सभी सम्मिलित थे। —केशरीमल बंडी, चाँदमल एम. शाह

सेक्रेटरी - दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल प्रतापगढ़

❁ ❁ ❁

श्री मोक्षमार्गप्रकाशक (उर्दू भाषा में)

पंडितप्रवर आचार्यकल्प श्री टोडरमलजी की हस्तलिखित प्रति श्री मोक्षमार्गप्रकाशक की फोटो-कापी की अक्षरशः नकल उर्दू भाषा में ३२४ पृष्ठों में छप गयी है। यह प्रति आप निम्नलिखित पतों से बिना मूल्य सिर्फ डाकव्यय भेजकर मँगवा सकते हैं।

पताः—

१. मुंशी सुमेरचंद जैन अराइज नवीस
२२८९ छत्ता प्रतापसिंह, किनारी बाजार, दिल्ली-६

२. दाताराम चैरीटेबिल ट्रस्ट
१५८३, दरीबा कलां, दिल्ली-६

पन्नालाल जैन अग्रवाल, ३८७२, चरखेवालां, गली कन्हैयालाल अत्तार, दिल्ली-६

❁ ❁ ❁

—: विज्ञप्ति :—

यदि ग्राहक संख्या पर्याप्त हो जाये तो निम्न ग्रंथ प्रकाशित करने का विचार है:—

(१) पुरुषार्थसिद्धि-उपाय (स्व. पंडित प्रवर श्री टोडरमलजी कृत हिन्दी टीका)

(२) मोक्षशास्त्र टीका (संग्राहक-श्री रामजीभाई दोशी) करीब ८०० पृष्ठ

(३) समयसार प्रवचन (भाग ३-४-५)

(४) आत्मप्रसिद्धि (समयसारजी में ४७ शक्तियों का वर्णन है, उस पर स्वामीजी के विस्तृत प्रवचन)

पहले से ग्राहक बनना आवश्यक है। अत: आप आवश्यक प्रतियों की संख्या सूचित करें। जहाँ मुमुक्षु मंडल हों, वहाँ उनके द्वारा सूचना भिजवायें।

पता—दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

—: सूचना :—

टोडरमल स्मारक भवन से प्रकाशित-बालबोध पाठमाला तथा वीतराग विज्ञान पाठमाला के गुजराती अनुवाद की व्यवस्था हो गई है। शीघ्र ही प्रकाशित होंगी। अत: अपना आर्डर जयपुर पहले से ही भेजें।

पता—मंत्री, टोडरमलजी स्मारक भवन, ए-4, बापूनगर, जयपुर (राज०)

❀ ❀ ❀

—: महाराष्ट्र में धर्मप्रचार :—

१. अनसिंग:—यहाँ ब्रह्मचारी पंडित दीपचंदजी माणिकचंदजी जैन का आगमन हुआ। चार दिन पूज्य श्री कानजीस्वामी के आध्यात्मिक प्रवचन टेपरेकार्ड द्वारा सुनने का लाभ जैन समाज को मिला। उसका मराठी में स्पष्टीकरण पंडितजी ने सरल भाषा में किया तथा सात तत्त्वों का परिचय कराया और टेपरील द्वारा भक्ति गीतों का कार्यक्रम दिया। कार्यक्रमों के फलस्वरूप यहाँ पुरुषों तथा महिलाओं के स्वाध्याय मंडलों की स्थापना हुई।

पुरुष स्वाध्याय-मंडल के प्रमुख वाचक:—मोतीलालजी अ. मुलावकर

महिला स्वाध्याय-मंडल के प्रमुख वाचिका:—सौ. सुमनबाई

प्रेषक:—श्री सत्येन्द्रकुमार जैन

२. पुसद:—ब्रह्म पंडित दीपचंदजी जैन का आगमन हुआ। तीन दिन तक प्रवचन का कार्यक्रम हुआ, यहाँ तीन मुनिजी के संघ ने विशेष रुचि प्रगट की। —श्री कुमारजी आहाले

३. वाशिम:—पंडित दीपचंदजी के कार्यक्रम में टेपरेकार्ड द्वारा पूज्य श्री कानजीस्वामी के आध्यात्मिक प्रवचन तथा भक्ति-गीतों का कार्यक्रम दिया गया, यहाँ दो स्वाध्याय-मंडलों की स्थापना श्री दीपचंदजी रुखबसा सावले की अध्यक्षता में हुई। स्वाध्याय-मंडल की प्रमुख वाचिका:—सौ. राजमतीबाई मोतीसा कान्हेड—इन्होंने स्वीकृति दी; मंडल के उद्घाटक:—श्री नारायणसा रतनसा डहाले हैं। सर्व जैन सभा ने धन्यवाद और आनंद प्रगट करके कार्यक्रम समाप्त किया।

४. हिंगोली:—अष्टाह्निका पर्व के हेतु से आमंत्रण देकर पंडित दीपचंदजी को बुलाया गया। धार्मिक कार्यक्रमों द्वारा अच्छी धर्मप्रभावना हुई।

५. खामगांव:—पंडित दीपचंदजी का आगमन हुआ। तीन दिन टेपरेकार्ड द्वारा पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के प्रवचन सुनाये। तथा सात तत्त्वों का परिचय सरलता से कराया। यहाँ जैन पाठशाला अच्छे ढंग से चल रही है।

६. अकोला:—पंडित दीपचंदजी ने चार दिन तक टेपरेकार्ड द्वारा पूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रवचन सुनवाये। अपूर्व धर्मप्रभावना हुई। —मंत्री, जैनसमाज अकोला

७. फालेगांव:—यहाँ पंडित दीपचंदजी जैन का आगमन आठ दिन के लिये हुआ। शिक्षण-शिविर के ढंग से कार्यक्रम हुए। यहाँ पाठशाला की स्थापना श्री जयवंत बलीरामजी संघई की अध्यक्षता में हुई तथा स्वाध्याय-मंडल की स्थापना पहले जब ब्रह्मचारीजी आये थे तब हुई थी। स्वाध्याय-मंडल तथा पाठशाला में पढ़ाई अच्छी चलती है। प्रेषक :—

जयवंत बलीरामजी संघई

दसलक्षणपर्व में ब्रह्मचारी दीपचंदजी जैन का धार्मिक कार्यक्रम पूना में रहेगा। पता निम्नानुसार है:—

श्री दिगम्बर जैन शांतिनाथ सेतवाल मंदिर

४५६, रविवार पेंठ, पूजा नं-२ (महाराष्ट्र)

नये प्रकाशन

❀ **श्रावकधर्म प्रकाश** (पद्मनंदि पंचविंशतिका के देशव्रतोद्योतन अधिकार पर पूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रवचन) द्वितीय आवृत्ति छपकर तैयार है। मूल्य दो रुपये, (पोस्टेज अलग)

❀ **जैन बालपोथी** (भाग-२) लेखक -ब्रह्मचारी हरिलाल जैन। गुजराती में ७५०० प्रतियाँ छपते ही बिक गई हैं। हिन्दी में भी १५००० छपी हैं। श्री एन.सी. जवेरी की ओर से अनेक जैनपत्रों के ग्राहकों को भेंट दी जायेंगी। आत्मधर्म के ग्राहकों को भी अगले महीने भेज दी जायेंगी। बड़े टाईप में द्विरंगी छपाई, चित्र संख्या-६०, मूल्य०=४० पैसा, कमीशन नहीं दिया जाता।

❀ **अष्ट प्रवचन** (भाग-२) पृष्ठ संख्या २००, मूल्य १=५० (श्री तारणस्वामी रचित 'उपदेश शुद्धसार' आदि ग्रंथों पर पूज्य श्री कानजीस्वामी के सम्यक्त्वप्रेरक प्रवचन) प्रकाशक:—सेठ भगवानदास शोभालाल सागर (म.प्र.)

पता:—श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोगनढ़ (सौराष्ट्र)

❀ ❀ ❀

—: आवश्यक सूचना :—

हमारी योजना के अनुसार वीतराग विज्ञान पाठशालाएँ खोलनेवाले महानुभाव अनुदान संबंधी फार्म तारीख ३१-अगस्त ७० तक भरकर भेज दें। फार्म २५ पैसे का पोस्टेज भेजकर मंगा लें।

पता - मंत्री, टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर-४ (राज.)

—: आध्यात्मिक शिविर :—

टोडरमल स्मारक भवन में तारीख १५-८-७० से १७-८-७० तक जैन प्रशिक्षण शिविर का आयोजन रखा था। प्रवचनकर्ता पंडित हुकमचंदजी न्यायतीर्थ एवं कक्षाओं में शिक्षण पंडित कपूरचंदजी, पंडित शीलचंदजी, श्री चिरंजीलालजी थे। विषय निश्चय-व्यवहार, सात तत्त्वों की भूल, मोक्षसाधन में पुरुषार्थ की ही मुख्यता, शंका-समाधान आदि।

(-मंत्री)

❀ ❀ ❀

टोडरमल स्मारक भवन जयपुर से मँगवाइये:—

१. खानिया तत्त्वचर्चा (भाग १-२)	१६.००
२. मोक्षमार्गप्रकाशक	२.७५
३. अध्यात्म संदेश	१.५०
४. टोडरमल जयंती स्मारिका	१.००
५ से ७. बालबोध पाठमाला (भाग १-२-३)	१.४५
८ से १०. वीतराग विज्ञान पाठमाला (भाग १-२-३)	१.८०
११. तत्त्व-निर्णय	०.२०
१२. शास्त्रों के अर्थ समझने की पद्धति	०.१२
१३. मुक्ति का मार्ग—	०.५०
१४. पद्मनंदि पंचविंशतिका ऋषभजिन स्तोत्र	०.२०

नोट:—सोनगढ़ द्वारा प्रकाशित संपूर्ण साहित्य भी हमारे यहाँ मिलेगा तथा हमारे द्वारा प्रकाशित सभी साहित्य सोनगढ़ (सौराष्ट्र) से भी मिलता है।

टोडरमल स्मारक भवन

ए-४, बापूनगर, जयपुर-४ (राज०)

मोक्ष को साधने में सहायक हो, वह सच्चा मित्र

प्रश्न:—पुण्य के कारणरूप शुभराग आत्मा का मित्र है या शत्रु ?

उत्तर:—वह शुभराग आत्मा को मोक्षप्राप्ति में बाधक है। मोक्षप्राप्ति में अंतराय है। इसलिये जो जीव शुद्धदशारूपी मोक्ष को साधना चाहता है, उसे तो उस राग को भी शत्रु समान मानना चाहिये। उसका नाश करने पर ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

अपने को अपना मोक्षकार्य साधने में जो रोकनेवाला है, उसको मित्र कैसे माना जाये ? आत्मा के सच्चे मित्र तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही हैं; जो मोक्षमार्ग साधने में सहायक हैं। अंतरंग में जब आंशिक निश्चय-धर्म है, उससमय भूमिकानुसार शुभराग निमित्तरूप होता है, उसे उपचार से व्यवहारधर्म कहा है। श्रद्धा में तो प्रथम से सर्व राग को हेय मानता है, यदि उसे श्रद्धा में उपादेय माने, तो वह मिथ्यादृष्टि ही है।

२३. श्री टाया एंड संस, उदयपुर (राज.)
२४. श्री एम. सी. तुरखीया, बम्बई
२५. श्री तरुणकुमार सुमतीचंद जैन C/o. रूपचंद शाह विपाशा, खंडवा (म.प्र.)
२६. श्री गुलाबचंदजी कैलाशचंदजी मामा, मारोठिया बाजार, इंदौर सीटी (म.प्र.)
२७. श्री सुमेरकुमार जैन एंड कंपनी, फुलेरा (राज.)
२८. श्री क्षुल्लकजी पूर्णसागरजी महाराज C/o. श्री अखिल भारतवीर्षीय केन्द्रीय श्री दिगम्बर जैन महासमिति, दमोह (म.प्र.)
२९. श्री सुंदरलालजी रमेशकुमारजी जैन, जुमेराती, गोलबाजार, भोपाल (म.प्र.)
३०. श्री कुमुदेशचंद्र जैन, ४८/१६२, जनरलगंज, कानपुर (उ.प्र.)
३१. श्री अमोलकचंदजी जैन 'बंधु', सुभाषगंज, अशोकनगर (म.प्र.)
३२. श्री दिगम्बर जैन समाज C/o. जुहारमलजी सूरजमलजी, नीमच (म.प्र.)
३३. श्री पूनचंदजी कटारिया C/o. पी. कटारीया एंड कंपनी, ५ साउथ हाथपाला रोड, इंदौर (म.प्र.)
३४. श्रीमती कमलश्री प्रसन्नकुमारजी जैन, शिवपुरी (म.प्र.)
३५. श्री नेमीचंदजी सरावगी, गोहाटी (आसाम)
३६. श्री शिखरचंदजी अजमेरा, गोहाटी (आसाम)
३७. सौ. सज्जनदेवी बंडी, प्रताप सदन, इंदौर (म.प्र.)
३८. श्रीमती बीरमादेवी कैलाशचंदजी, दिल्ली
३९. श्रीमती माणिकबाई पाटनी जैन, देवास रोड, उज्जैन (म.प्र.)
४०. श्री हीरालालजी पाटोदी जैन, लोहरदा, देवास (म.प्र.)
४१. श्री रत्नप्रभादेवी सेठी C/o. विनोद भवन-विनोद मिल्स, उज्जैन (म.प्र.)

सन् १९७१ की जनगणना के समय 'धर्म' के खाना नं० १० में गौत्र, जाति आदि ना लिखाकर केवल 'जैन' ही लिखाकर सही संख्या इकट्ठी करने में सरकार की मदद करें।

विश्वतत्त्वों का सत्यस्वरूप सम्यक् अनेकांत द्वारा बतलाकर सच्चा समाधान, एवं अपूर्व शांति का उपाय दर्शानेवाले—

सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

१	समयसार	(प्रेस में)
२	प्रवचनसार	४.००
३	समयसार कलश-टीका	२.७५
४	पंचास्तिकाय-संग्रह	३.५०
५	नियमसार	४.००
६	समयसार प्रवचन (भाग-४)	४.००
७	मुक्ति का मार्ग	०.५०
८	जैनसिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-१	०.७५
	'' '' '' भाग-२	१.००
	'' '' '' भाग-३	०.५०
९	चिद्विलास	१.५०
१०	जैन बालपोथी	०.२५
११	समयसार पद्यानुवाद	०.२५
१२	द्रव्यसंग्रह	०.८५
१३	छहढाला (सचित्र)	१.००
१४	अध्यात्म-संदेश	१.५०
१५	नियमसार (हरिगीत)	०.२५
१६	धर्म के संबंध में अनेक भूलें	बिना मूल्य
१७	अष्ट-प्रवचन	१.५०
१८	मोक्षमार्गप्रकाशक	२.५०
१९	अपूर्व अवसर-प्रवचन	१.५०
२०	पण्डित टोडरमलजी स्मारिका	१.००
२१	बालबोध पाठमाला, भाग-१	०.४०
२२	बालबोध पाठमाला, भाग-२	०.५०
२३	बालबोध पाठमाला, भाग-३	०.५५
२४	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-१	०.५०
२५	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-२	०.६५
२६	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-३	०.६५
	छह पुस्तकों का कुल मूल्य	३.२५
२७	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०.२५
२८	सन्मति संदेश (पूज्य श्री कानजीस्वामी विशेषांक)	०.५०
२९	मंगल तीर्थयात्रा (गुजराती-सचित्र)	६.००
	जैन बालपोथी भाग-२	०.४०

प्राप्तिस्थान :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ के लिये प्रकाशक एवं मुद्रक :

मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)